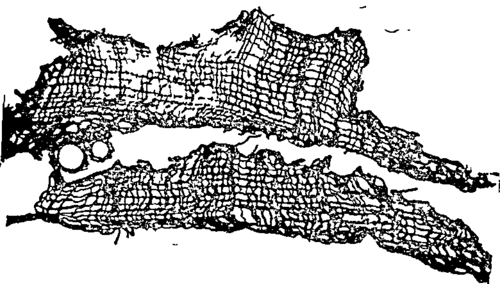
मोती, सूखे समुद्र का

जरथान के सजनशील शिक्षक कवियो की कविताओ का सकलन)

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए
आधुनिक प्रकाशन, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित

मोती, सूखे समुद्र का



सं० कैलाश वाजपेयी

प्रकाशक
शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
आधुनिक प्रकाशन
दाऊजी मदिर, बीकानेर 334001

आवरण सुशील सक्सैना

मूल्य सोलह रुपये नब्बे पसे मात्र

सस्करण प्रथम, 5 सितम्बर, 1989

मुद्रक एस० एन० प्रिण्टस,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MOTI SOOKHE SAMUDRA KA
(Poetry)

Edited by Kilash Vajpeyi

Price Rs 16 90

आमुख

राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारो की सृजन-यात्रा को शुरू हुए 22 वर्ष बीत चुके हैं। 1967 मे शिक्षक दिवस प्रकाशनों की जिस शृंखला का सूत्रपात किया गया था, उसम अब तक 106 पुस्तकें सामने आ चुकी हैं। सृजन का शतक तो हमने गत वर्ष ही पार कर लिया था, अब हमारी यात्रा दूसरे शतक की ओर है—क्रमवद्ध गतिमान और पुख्ता। सृजन-यात्रा की इस सफलता पर मैं राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारो को बधाई देता हू। मुझे विश्वास है कि अपनी रचनात्मक प्रतिभा और मौलिक ऊर्जा से वे पीढी को सस्कारित करने और मानव प्रकृति को परिष्कृत करने मे कामयाब होग।

शिक्षक साहित्यकारो की इन कृतियो को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और सराहना मिली है। अपने प्रकाशनो मे हमने विविधता और गुणवत्ता दोनो पर ही ध्यान दिया है तथा देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारो से उनका सम्पादन करवाकर उन्हे हर दृष्टि से स्तरीय बनाने का प्रयास भी किया है। जाहिर है कि उच्चकोटि के सम्पादन के कारण ऐसी रचनाए ही निखर कर सामने आई हैं जो युग की रचनात्मक सवेदना को सार्थक अभिव्यक्ति दे सकें।

साहित्य लेखन अपने आप मे एक अनुष्ठान है। यह सत्य तक पहुचने की मनुष्य की ललक का एक ऐसा यत्न है जिसमे क्षर न होने वाले 'अक्षर' की तथा चिरन्तन 'शब्द' की पूजा होती है। शब्द की यह अनुगूज ही युग की अनुगूज है। वर्तमान को सस्कारित करके एक आस्थावान उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करना ही इसका लक्ष्य है। मुझे आशा है कि हमारे शिक्षक साहित्यकार इस कसौटी पर खरे उतरेंगे।

गत वर्ष के आमुख मे मैंने एक सुझाव दिया था। मैंने कहा था कि "साहित्य की सभी विधाओ मे गति के साथ लिखने वाले कलम के धनी अध्यापकगण शिक्षक दिवस योजना के तहत प्रकाशित होने वाली पाच पुस्तको की अगली कडी को इतना स्तरीय बनायें कि उनकी रचनाओ पर राज्य के विद्यालयो मे और साहित्य-सस्थाओ मे गोष्ठिया आयोजित की जाए। इसके लिए वे अभी से प्रयत्न मे लग जायें ताकि अगले वर्ष के प्रकाशनो मे उनकी वर्ष के दौरान लिखी गई प्रतिनिधि रचनाए ही प्रकाश मे आयें।" आशा है इस वर्ष की पाचो पुस्तकें इस कसौटी पर खरी उतरेंगी तथा साहित्यिक चर्चा का एक ऐसा माहौल बनेगा जो लेखकों और पाठको के बीच मे एक सार्थक सवाद सिद्ध हो सकेगा।

एक बात और। दिशाबोध (जुलाई, 1989) में मैंने खुली किताब के शैक्षिक उपहार की चर्चा की थी। खुली किताब से आशय है अध्ययन का वह मुक्त वातावरण, जो अकादमिक घुटन को दूर कर, शैक्षिक ऊब को मिटाये और बौद्धिक बोझिलता को हल्का करे। खुली किताब वह है जिससे दूसरी किताबें भी खुलें, जो पढ़ने-पढ़ाने का एक मुक्त वातावरण बनाये और चिन्तन व सृजन को नये आयाम दे। इसमें सबका विकास होगा—पढ़ने वाले का भी और पढ़ाने वाले का भी। अध्ययन केवल पद और इन्क्रीमेण्ट के तंग गलियारों तक सीमित नहीं रहेगा वरन् सरस्वती (ज्ञान, जिज्ञासा, रचनात्मक सृजन) के प्रति समर्पित होगा। साहित्य भी तो इसी का एक रूप है। एक अनौपचारिक शिक्षण है यह। जीवन की किताब से बटोरे हुए अनुभव जब गहरी संवेदनाओं से जुड़ते हैं तो अच्छे साहित्य का जन्म होता है। मुझे विश्वास है कि गुरुजन खुली किताब के खुले चिन्तन के आधार पर जो सृजन करेंगे वह स्थायी महत्व का होगा और पीढ़ी को संस्कारित कर सकेगा। मुझे उसी दिन की प्रतीक्षा है।

इस वर्ष प्रकाशित होने वाली पांच पुस्तकें हैं—

1 मोती सूखे समुद्र का (कविता संकलन) सं० कैलाश बाजपेयी।
2 अनुभव के स्फुलिंग (हिन्दी विविधा) सं० गोपाल राय।
3 पाचामृत (राजस्थानी विविधा) सं० नानूराम संस्कर्ता।
4 भीगी हुई रेत (कहानी संकलन) सं० चित्रा मुद्गल।
5 पग पग रंग (बाल साहित्य) सं० अनन्त कुशवाहा।

मैं इस अवसर पर अतिथि सम्पादकों, रचनाशील अध्यापकों, प्रकाशकों एवं उन सभी लोगों को धन्यवाद देता हूं जो इस अनुष्ठान में किसी न किसी प्रकार से भागीदार बने हैं। जिन लेखकों की रचनाएं इस वर्ष प्रकाशन में नहीं आ सकी हैं वे निराश न हों, बल्कि अपने लेखन की धार को और अधिक तराशने का प्रयत्न करें।

शिक्षक दिवस, 1989

(ललित के पंवार)
निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान,
बीकानेर।

भूमिका

कविता का समझने का मानदण्ड क्या हो ? क्या कविता ऐसा बहता पानी है जो अलग-अलग ऋतुओ म अलग अलग रगो वाला दीख पडता है ? क्या पानी का कोई अपना रग होता है ? क्या इस पानी को उपयोगितावादी दृष्टि से परखा जाए या फिर यह मान लिया जाए कि कैसा भी पानी हो, पानी का पानी भर होना काफी है आदि, अनेक प्रश्न एस है जिह समझे बिना पिछले बारह पद्रह वर्षों मे लिखी गई हिंदी कविता को सही ढग पर नही परखा जा सकता।

बीसवी शती के उत्तराध म यह कहना कि कविता नितान्त वैयक्तिक एकालाप है शायद बहुत उचित नही होगा। तव फिर कविता को हर स्थिति म जीवन से जुडा हुआ होना चाहिए और जब हम यह मान लेते हैं तो तत्काल ध्यान जीवन को सचालित करन वाली शक्तिया की ओर चला जाता है। वतमान शासन-व्यवस्था मे मनुष्य का भाग्य राजसत्ता और उसके द्वारा निधारित अथनीतियो द्वारा सचालित होता है। अथनीति की तह म अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और देश देशा की शासन प्रणालिया का हाथ रहता है। नयी वैज्ञानिक उपलब्धिया, नए उद्योगो के द्वार खोलती है और नए उद्याग की रीढ निर्मित होती है यत्र म। तब क्या आज के कवि की मानसिकता को समझन के लिए विज्ञान के विकसमान पखो की उडान को तोला जाए ? कुछ देशा ने व्यक्ति की आर्थिक उन्नति के लिए मुक्त व्यापार की स्वतत्रता को अनिवाय मानकर पूजीवादी अथ-व्यवस्था पर बल दिया किन्तु विज्ञान और यत्र के शतानी पजा स निसृत विप ने यह स्पष्ट कर दिया कि मुक्त व्यापार की छूट से सारा का-सारा अथतत्र थोडे से मुनाफाखोर उद्याग पतियो की गिरफ्त म चला जाता है और शेप जनता रोटी और छत की व्यवस्था जुटान म वक्त से पहले ही नष्ट हो जाती है।

भारत जसे देश मे जहा मिली-जुली अथ प्रणाली स्वीकृत है राजसत्ता भी लगभग वसा ही व्यवहार करती है जसा कि भारी उद्यागो का मालिक पूजीपति। परिणामत अपन देश म पाखण्ड, भयकर दुवित्तापन और नैराश्य पनपा है, जो

कभी घोर आक्रामकता का रुख अपना लेता है तो कभी आत्मर्दैन्य का। भारत की वतमान राजनीति ने एक विचित्र प्रकार का आर्थिक सास्कृतिक सकट पदा कर दिया है जिसका दो टूक उत्तर किसी भी एक विचारधारा के पास झलकता नही दीख पडता। मगर तब भी यह भरोसा बनाए रखने की ललक होती है कि शायद साहित्यकार को कोई उत्तर सूझेगा, क्योकि सामाजिक विसगतियो को प्रतिबिम्बित करने का एकमात्र पारदार शीशा उसी के पास होता है।

दुनिया म हमेशा स दो दृष्टिया रही हैं, जिनक परिणामस्वरूप दो तरह की सस्कृतिया पनपी है। पहली तरह की सस्कृति म केन्द्र हमेशा मनुष्य रहा और दूसरी मे इश्वर। दो दृष्टिया म पहली क अनुसार व्यक्ति समाज द्वारा परिभाषित होता है। समाज से अलग उसका अस्तित्व न श्रेयस्कर है और न ही प्रेय। दूसरी दृष्टि कहती है समाज कही है ही नही। जहा कही जाओ समाज को तलाशने, हर कही जब भी मिलेगा जो भी मिलेगा वह व्यक्ति ही होगा।

लगता है जैसे ये दोना दृष्टिया अतिवादी हैं। इन दोनो मे तालमेल बिठाकर ही आदमी महत्तर आदर्शों की ओर बढ सकता है। क्या कृष्ण, गाधी, आइसटाइन विवेकानन्द या काल मार्क्स व्यक्ति नही थे? क्या इन महापुरुषा को नजरअन्दाज करके समाज प्रगति कर सकता है? किसी समाज के विकास के लिए प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियो का होना जरूरी है। सबको एक ही फीत स नापने वाला फीता बहुत कारगर सिद्ध हो सकता है मगर कीमती या कल्याणकारी नही। साधारण और प्रातिभ के बीच के फक की समझ होनी ही चाहिए। जिस सृष्टि म दो पत्तियां तक एक जसी नही, वहा व्यक्ति की अवहेलना करना बहुत बुद्धिमानी का लक्षण नही है। किसी के हाथ कुशलता से काय करते हैं, किसी की वाणी। दोना प्रकार की अभिव्यक्तिया आदरणीय है, इसलिए यह जरूरी है कि हम एक एसे स्वस्थ और सन्तुलित समाज की सरचना करें जहा हर व्यक्ति अपने विकास की अन्तिम सीढी पर पहुच सके।

विज्ञान लगातार प्रगति करता जा रहा है मगर हर बार जब वह नया कुछ प्राप्त करता है तो साथ ही यह भी घोषित करता है कि उसकी जानकारी की तुलना म 'नाजानकारी' का क्षेत्र ज्यादा बडा और असाध्य है। पहले वैज्ञानिक हर नयी उपलब्धि के बाद गव स यह कहा करता था देखा मैंने कस प्रकृति पर विजय प्राप्त की मगर आज का वैज्ञानिक रहस्यवादियो अथवा धम क मम का समझने वाले मना की तरह विनत हो गया है।

हालाकि उसकी खोजो के कारण हुई औद्योगिक एव यात्रिक प्रगति ने एक निहायत निर्वैयक्तिक, मूल्यमूढ, रक्तपात्नान्त सभ्यता को जन्म दिया है। कोई भी

प्रगति, प्रगति नही, अगर वह पहले से बेहतर इन्सान को जन्म नही देती। आत्म-विकास की सरणि म इस तथ्य की परख जरूरी है कि तमाम नए आविष्कारो के परिप्रेक्ष्य म समाज कहा तक सभ्य हुआ है। हिंसा, आक्रामकता, बलात्कार, नाभिकीय युद्ध क खतरे, राष्ट्रो क बीच की ठडी पैंतरबाजी य सब आखिर हम किस ओर ले जा रहे ह?

हमारी विशेषता अनेकानेक जीवन शैलिया को एक सूत्र मे जोडन वाले उस तार की पहचान है जो सनातन काल से हम बचाती चली आई है। यहा अगर ब्राह्मण सस्कृति पनपी है तो उसी के साथ श्रमण सस्कृति भी। यहा अगर योग दृष्टि लोकप्रिय हुई तो साख्य दृष्टि भी। जिन्ह विश्व दशन की समझ ह व मानेंगे कि पूरी पथ्वी पर अब तक हुआ सारा का सारा चिन्तन इन्ही दो वर्गों म विभाजित होता है। विभिन्नता और वविध्य के बीच साक्षी रहकर जीवन जीन की शैली हमारी नितान्त अपनी है इसलिए सब कुछ जो विदेशी है, निन्दनीय नही होना चाहिए। मगर अन्धानुकरण भी कहा उचित होता है। विचार विनिमय स हमे कतराना नही चाहिए। व्यत्यय स सस्कृतिया स्वस्थ और पुष्ट होती है। हमारी सस्कृति का उत्स हमेशा स नीति थी। हमने जीवन के जिन चार पुरुषार्थों पर बल दिया था, व आज भी मले नही पडे। जब हमने धम को पहले खाने म रखवाया तो इसका मतलब यही था कि मर्यादा म रहकर कमाया गया धन (अथ) मर्यादा म रहकर पूरी की गई वासना (काम) और इन्द्रियो क स्तर एक दिन तप्त होकर मोक्ष की कामना बनग। मोक्ष किसी भी समझदार आदमी का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। मोक्ष, यानी छुटकारा यानी कैवल्य या निर्वाण। इसे पलायनवाद कहने वाली दृष्टि धुधली या अधकचरी है।

अपनी परम्परा की पडताल हर नए रचनाकार के लिए जरूरी है और आज के युग म तो परम्परा का यह अमूल्य कोश और भी अधिक अथवान है क्योकि विज्ञान और यान्त्रिकी ने एक एक करके हमारी सारी अत सम्पत्ति छीन ली है। स्वप्न देखने की सुविधा अब शायद ही किसी को हो। जबकि मनोविज्ञान के अनुसार अगर स्वप्न गिर जाता है तो आदमी या तो जनक, बुद्ध या महावीर हो जाता है या फिर पागल।

वतमान युग म बढी हुई जनसख्या, अन्धी यान्त्रिकता, अदूरदर्शी औद्योगीकरण, प्रदूषण और सूचना विस्फोट आदि क कारण दश का सामूहिक अवचेतन इतना डावाडोल हो गया है कि किसी भी रचनाकार के लिए समाज मे अपनी सही भूमिका निर्धारित कर पाना दिन-ब दिन कठिन से कठिनतर होता चला जा रहा है क्योकि परिवेश जटिल हो चुका है इसलिए चिन्तन म सादगी नही रही क्योकि

व्यापारी सभ्यता का बोलबाला है इसलिए विचारों का अवमूल्यन हो गया है।

सूचना और प्रचार के युग में आम आदमी की दृष्टि, भागती कारों, जलती हुई बत्तियों मनोरंजन के साधनों और विशाल इमारतों पर पड़ती है। वह इसी सबको सत्य मानकर इन्हें पाने के लिए लालायित हो उठता है और अंत में इन्हीं सबके बीच खो जाता है। मगर सही रचनाकार के साथ ऐसा नहीं होता या कम-से कम उस रचनाकार के साथ नहीं, जिसने सिक्के का दूसरा पहलू भी देखा है। जो रचनाकार यांत्रिकता के इस युग में भी घूमते हुए पहिए के पीछे की धुरी देख पाता है वह इस शहरी कागारोल में खो नहीं जाता। किसी न किसी तरह वह अपनी अस्मिता बचा ही लेता है। युग चाहे जितना भयंकर हो कविता का बचना या कविता को बचाना जरूरी है।

हिंदी समर्थ भाषा है। उसने अतीत में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तमाम तरह के शोषण के बावजूद वह आज भी समाज में सांस लेते आदमी के सुख-दुख को किसी-न किसी रूप में वाणी देती रही, इसी उद्देश्य को सामने रखकर अगर हम इन रचनाओं को पढ़ें तो इनमें एक बात जो सारी रचनाओं में निरंतर झलकती दीख पड़ती है वह है इन रचनाकारों का सामाजिक सरोकार। आसपास जो कुछ भी घट रहा है सही या गलत, उसकी गूंज इन रचनाओं में है। यह अलग बात है कि कहीं कुछ रचनाकार इस विसंगति को आत्मदया पर उतार लाते हैं तो दूसरे उसे एक तटस्थ दृष्टि से देखते हैं। कुछ में यह छटपटाहट सीधे सीधे एक प्रहारक स्थिति से छुटकारा पा जाने की नीयत लिए हुए है तो कुछ सामाजिकता की सीमा से भी आगे चले जाते हैं। हालांकि सामाजिकता से आगे जाने की कोशिश में वे चालू अर्थों में असामाजिक भी नहीं हो जाते वरन एक ऐसे अनुभव स्तर की सूचना देते हैं जहां सिर्फ मनुष्य ही महत्त्वपूर्ण नहीं सभी को जिंदा रहने का अधिकार है। यह दृष्टि अधिक व्यापक दृष्टि है—जिन लोगों ने तरंग विज्ञान, प्रमात्रा भौतिकी सूक्ष्म जैविकी, परिवेशीय मनोविज्ञान आदि विषय पढ़े हैं, वे मानेंगे कि यहां घास, कीड़ा और चिड़िया भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि आदमी। आदमी को केंद्र में रखकर जो सिद्धांत आज तक गढ़े गए थे, वे सब अब सिर्फ इसलिए झूठे पड़ने जा रहे हैं क्योंकि वे एकांगी थे। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य की श्रेष्ठता में कहीं कोई व्यतिक्रम आया है, बल्कि इसका सीधा-सा मतलब यह है कि जो मनुष्य अपनी कल्पनाशीलता, सर्जनात्मकता और अवबोधन यानी परसेप्शन (Perception) के कारण आज तक महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है, वह मनुष्य अपना अस्तित्व तभी तक बचाए रख सकता है जब तक कि उसका पर्यावरण स्वस्थ है जब तक नदियां प्रदूषित नहीं हैं जब तक जंगल हरे हैं जब तक पशु-पक्षी बेदर्दी से मारे नहीं जा रहे।

बुद्धि आदमी को दूसरे जीवधारियो से अलग करती है ऐसा मानने मे किसी को एतराज न होगा। मगर अगर इसी बुद्धि के बल पर आदमी प्रकृति के साथ बलात्कार करता चला जाएगा तो आदमी स्वय भी बहुत दिन जिदा न रह पायेगा, इस सग्रह म मछली और पेड के बहाने जो रचनाए लिखी गई हैं वे निश्चय ही एक नये सवेदना-स्तर की आहट देती हैं, जिसे सामान्य आदमी अपनी आखो से नही देख पाता। ऐसा अनुभव कोई रचनाकार अगर पाठको का करवा पाय तो सही कवि दृष्टि होती है। इस सग्रह म एसी रचनाए बहुत थोडी ह, तब भी है तो, यही क्या कम है।

आहार, निद्रा भय और मथुन ये चार तो सभी की जिदगी का हिस्सा है, मगर इनके अलावा आदमी मे कुछ ऐसा है जो उसे दूसरे जीवधारियो से अलग करता है। आदमी के पास एक मन है जो सोचता है और जानता है कि सोचा जा सकता है। जिस आदमी मे दूसरे म जुडने की क्षमता अधिक होती है जो सवेदना के स्तर पर ज्यादा तरल होता है और जिसे अपने लिए गये क्षण को वाणी देना आता है उसे रचनाकार कहा जाता है, ऐसा विद्वानो का मत है। मगर अभिव्यक्ति के क्षणो म अक्सर ऐसा होता है कि पिछला कहा गया एक मॉडल बनकर सामने आ जाता है। परिणाम यह होता है कि लिखने वाले के लिए नयी होती हुई भी ऐसी रचना बासी ही होती है।

बहुतरे रचनाकार एसे होते हैं जिन्होने कभी कोई रचना पढी होती ह, जो उनके मन म कही अटकी रह जाती है। फिर जब कभी वे कविता करने बठते है तो अनजाने ही पहले पढी गई कविता ही लिख डालते हैं। इस सग्रह म ऐसी कई रचनाए है, जिनम दूसरो की गूज है।

कविता के विषय म यह कहना सही नही है कि वह अनायास फूटती है। अभिव्यक्त होने से पहले भी वह कही होती है, ठीक उसी तरह जैसे बादल। कही समुद्र की लहरो और सूर्य की किरणो के बीच फिर जो बादल हम आखो के सामने बरसता दीख पडता है उसकी भाप भी कई स्थितिया से गुजरती है। उसके साथ कई घटनाए घटती ह। हवा उसे कई कसौटियो पर कसती है। तब भी यह बिलकुल जरूरी नही कि एक भरी-पूरी घटा बरसे ही। बरसने के लिए उसका फटना जरूरी है। कई बार फटने की घटना होते होते रह जाती है। जिस तरह बादल बनने-बरसने का सिद्धात आज तक वैज्ञानिको की समझ म नही आया, उसी तरह कविता का भी हाल है। अभी हाल म मानसून को लेकर जो खोज हुई है उसे थ्योरी आफ केओस कहा जा रहा है।

वैज्ञानिको का कहना है कि हम यहा तक की खबर है कि बादल समुद्र की

लहरो पर बनत है, हवा उन्ह उडाकर ले जाती है, फिर उनका दल किसी विशेष दिशा की आर चलता ह, फिर घने जगल उन्ह बुलाते है, बादल वहा तक आ भी जात है मगर अगर तितलिया या और एस ही कुछ और जीवधारी राजी न हो तो बादल बिना बरसे निकल जात हैं। यही सिद्धात उन्होंने आदमी की सजनशीलता पर भी आरोपित किया है। सब प्रतिभाशाली लोग इसी सिद्धान्त क अनुसार सजन करते ह।

जो हो, इस सग्रह क लिए कविताए चुनन का काय बडा कठिन अनुभव सिद्ध हुआ। इसलिए कि उपलब्ध सामग्री इतनी दाहराव भरी थी कि निणय लन म मुश्किल पडी। दूसरा बधन इसके आकार का रहा और तीसरा यह कि जिस योजना के अतगत इस सग्रह का प्रकाशन होना है उसका उद्दश्य नय रचनाकारा को प्रोत्साहित करना है। आज भले ही वे कम समक्ष हा मगर कल क्या पता इन्ही म स कोई एक आग आ जाये ! तब शिक्षा विभाग की यह याजना और अधिक प्रशसनीय कही जायगी।

डी 203, साकेत एवयू II
नई दिल्ली-110017

(कलाश वाजपयी)

अनुक्रम



समर्पण

भागीरथ भार्गव

सुनो डाक्टर,
यदि धैर्य से सुन सको
सच कहता हूं—
यदि यकीन कर सको।

मुझे कहा गया है—डाइग्नोसिस के बाद
कि दोहरी जिन्दगी जीता हूं—मैं।

मेरे डाक्टर, बताओ।
एक ही जन, एक ही काल और एक ही
समयावधि में
एक साथ दो दो जिन्दगियां जीता है?
ये मेरे समस्त अंग-प्रत्यंग सामने हैं तुम्हारे
मानो मेरी बात, परखो इन्हें—
कर डालो इनका परीक्षण।

लो, पढ डालो ललाट की रेखाएं
ये भाग्य रेखाएं भी हो सकती हैं
और संभव है—
माथे पर पड गये हों बल
अपनी ही ऐंठन से।

और य भी—सीधी ही रहती है लगातार
वक्रता नही उभरती है इनम
क्या इसीलिए रहस्यमयी है ?

पलको का झपकना लगातार होता है
क्योकि लगातार देख सकने की
सामर्थ्य ही नही रह गई है।
पलको मे वद आखें—बहुत बेहया है
सच है कि म उनसे सब कुछ देख पाता हू
पढ भी लेता हू
किन्तु तुम इन्हे परख कर देखो
सर्वाधिक आरोपा और विकृतिया की शिकार ये ही हैं

आरोप है—
कि य लगती है—भोली और निष्कलक
किन्तु है—इसके विपरीत
एकदम काइया और शरारत से भरी
पर सचाइ यह है कि तमाम एचापन इनम है।

आप अपन काना पर यकीन न करे
जान लोग क्या-क्या गढ लत है—
किस्स-कहानिया
और समस्त कान रुचि से इन्ह सुन लेत हैं
किन्तु,
मेरे कान, मेर अपने है—उन्ह दखभाल ला
कण नही हू—कवचधारी
इनक कपाट हैं खुले
विभिन्न राग रागिनिया के आस्वाद के बाद
अब य है निष्क्रिय
सुन तो सब कुछ लत है
पर अब नही हो पात हैं—तरगित।

नाक—अब नही रह गई है—
साफ, सुथरी ऊची व नुकीली
नथूने फूले रहत हैं—
हवा को तेजी से साथ भर तो लेते है
किन्तु छोड नही पात है—उसी गति से।

कपोल—कपोल-कल्पित हो गय हैं
विदा हो गई है उनकी लालिमा
उनक स्थान पर उभरन लगी हैं हड्डिया।

होठ—बहुत फडकत थ कभी
अब शात हैं
सुधारस नही इन पर
अकित है केवल—गरल की नीलिमा
जो मेरी ही अपनी विकृतिया की उपज है।

स्कध और बाहु—केवल दशनीय है—प्रदशन के निमित्त
दिखलाई दत ह—दृढ और विशाल
कितु नही ले पात ह—
शक्ति और साहस भरा कोई निणय।

हृदय की बात कहू—
पर बात सदा मस्तिष्क से
और मस्तिष्क की कही जाती है—
हृदय की कोई बात कभी होती ही नही है
कितु कथा-कहानियो मे दिल की भी
बात होती है।

मस्तिष्क भरा है—स्मतियो की रेखाओ से
अनेक ताने बानो से भरा है—
यह उलझनो का पुलिदा
नही है कोई समाधान।

मुझे लगता है—
मेरा हृदय अब भी है वही कोमल, भावुक
एक मास पिण्ड ।
सिफ इस अन्तर के साथ कि उसकी धडकनें
अब तेज होने लगी है ।
यह स्पदित हो जाता है क्षणावेश मे
धमनिया और शिराओ म गम लावे मा
दौडने लगता है मरा ही रक्त ।

पर मेरे डॉक्टर—
सर्वाधिक आरोपो का शिकार भी यही है ।

आरोप है—
यह है कालिमायुक्त
नही है योग्य कुछ भी पाने को
इसकी क्रियाए मात्र अभिनय हैं
यह बन गया है—अनेक नाटको का पात्र भर

डॉक्टर,
इसी के परीक्षण मे तुम्हारी समस्त योग्यता
दाव पर लग जायेगी ।
तुम सावधान रहना ।
कही तुम स्वय न बन जाओ नाटक के विदूषक

बहुत कुछ उदरस्थ करना होता है—
मीठा और कडुआ भी
इसीलिए यह उदर मेरा
अम्ल, पित्त और दुर्गन्धित वायु का
युद्ध क्षेत्र बन गया है ।

मुहावरो मे पढाया होगा किसी हिन्दी अध्यापक ने
कि पट मे बात नही पचती है
और अपच से उभर आता है यह ।

अब तुम ही देखो—
यह कैसा अजीर्ण है ?
जो चैन से न सो पाता है
और न ही सोने देता है
शरीर के दूसरे अवयवों को ।

और ये मेरी दो टांगें
कहते हैं—शुतुरमुर्गी हो गई हैं
और जिस जमीन पर टिकी हैं ये
वह भी मेरी अपनी नहीं रह गई है
आधार ही कहीं हिल गया है ।

अब यह सब तुम पर है—मेरे डाक्टर
विलम्ब न करो
सभी परीक्षण कर डालो

लो, समस्त अधिकार तुम्हें देता हूं
—शल्य क्रिया के
किसी भी अंग को चीर फाड़ डालो
और गले सड़े अंगों को काटकर दूर फेंक दो ।

सच, मुझे तुम्हारी प्रतीक्षा थी
झूठे आश्वासन बहुत थे
प्रशस्ति गान आस-पास गूंजते थे
मेरी कीर्ति पताकाएं लहराने लगती थीं—
चहुं ओर
और बस मैं एक मद में झूमने लगता था ।

देरी में हुआ तुम्हारा आगमन
किन्तु तुम आ सके यह क्या कम है ?
अच्छा होता तुम पूर्व में आते
चिंता न करो विकृतियां नहीं उभरी हैं इतनी
कि चिकित्सा ही संभव न हो ।

तुम नय और ताजे हो—
अनुभव की धार पर अभी कसे नही हो
कि तु मैं जानता हू—
नय ज्ञान और मेधा स युक्त हो तुम
इसीलिए अटूट विश्वास और निष्ठा के साथ
सौंपता हू तुम्ह—अपन आपको।

०

सुनो शुभचिन्तक

कमर मेवाड़ी

तुम्हारे तरकश के सभी तीर
भोंथरे हो गए
अब वे नहीं कर सकते किसी का सहार
कानून और व्यवस्था का कवच पहन
तुम कितने दिन
अपनी जान की खैर मनाओगे
और शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे
तुम्हारी मुस्कराहट का जादू
जब समाप्त हो जायेगा
तब हजार-हजार कण्ठो से निकलेगा विजय गान
और धरती पर
कविता की एक नई फसल लहलहायेगी
सुनो शुभचिंतक !
षडयन्त्रो की बाजीगरी की उम्र
अधिक लम्बी नहीं होती
फिर हमारे वक्त का इतिहास
सिर्फ वह नहीं है
जो तुम समझ रहे हो
वह तो तुम्हारे मन का अधकार है
जो तुम्हे न प्रशसा दे सकता है न यश ।

०

रीत जाये नहीं, अपने नयन की सीपी

सावित्री परमार

रागनी का
झिलमिला
मन नाच उठा
बड़ी मुश्किल से कहीं
एक स्वप्न पलता है।

    आज का ही
    कुछ गाने बहुत हैं
    [illegible]
    विगत की कथा गाठ बांधें
    चांदनी जिन्दगी
    मिला है वक्त है
    आराधना की
    कगारों पर कथा उग आयें
रीत जाये
नहीं अपने
नयन की सीपी
कहीं मुश्किल से
कोई मोती [illegible] है।

    [illegible]
    [illegible]
    [illegible]

मेहमान बन मुस्कान आई है
रोक ले उल्लास को
हर उमर की देहरी पर
जिन्दगी ने
खुशी की एक घड़ी पाई है
सास अपनी
कहीं बेपर्दा
न हो जाये
गरल पीकर ही कोई
क्षण अमर बनता है ।

०

मुस्कान

दिनेश विजयवर्गीय

जेठ की तपती दुपहरी म
एक काली लडकी
झील के किनारे
दूर पहाडी क आखिरी छोर पर
जहा लम्बे छोट दरख्तो के झुण्ड
आपस म बाह डाले मित्रवत खडे हैं
रस्सी डाले झूल रही है
और गाव के सेठ की भसो को
हरी घास चरा रही है
वह मुस्कराती है, अपनी मा की आर
जो दूर खजूरा और झाडिया से भर
ऊबट खाबड कटीले सक्डे रास्तो मे
टोकरी लिए छान वीन रही है
जि ह जलाकर शाम का सेकेगी रोटिया
तब बच्चो और थके हारे पति के चेहरे पर
पट भरने की सूखी मुस्कान होगी
इतने बरस गुजर गये
सेठ की चाकरी करते
पर उसके हिस्से मे कहा है
सेठ की पत्नी की तरह
त्योहारी मुस्कान ?

o

भाषा

मालचन्द्र शर्मा

दरख्त और तिडक्त
सम्बन्धो की धरोहर को लेकर
होते जा रहे है हम—प्रगतिशील
आदमी की शक्ल मे उभरते जा रहे हैं
दिन प्रतिदिन
महज हड्डियो के ढाचे
समय के साथ
भाषा भी बदल गई है
आदमी के सम्पर्क की
अब आवाज नही है
बल्कि चारो ओर
मात्र हड्डियो की टकराहट है
जो एक लम्बा सुकून दे जाती है
एब्सड म्यूजिक के रूप मे
इन्सानियत के सौदागरो को

०

आपको देख लिया

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

मैं और ईश्वर
दो में से आपको
कोई एक चुनना हो
तो कहिए किसको
आप अपना—
मूल्यवान मत देंगे ?
राजनेता, अपने
परिचित से बोला ।
'ईश्वर को'
परिचित ने सोचकर
मुंह खोला ।
'हम तो प्रत्यक्ष है
ईश्वर का क्या लखा ?
उसका अस्तित्व भी
है या नही किसने देखा ?
कहते हुए नेता ने
सीने को ताना
सगर्व परिचित की
आखो मे झाका ।
"यही तो बात है
परिचित ने उत्तर दिया—
उसको अभी नही देखा
आपको—देख लिया ।

०

वह लडकी

ओम पुरोहित 'कागद'

सामने के झोपडे म
रहन वाली वह लडकी
अब सपन नही देखती।

वह जानती है कि सपन मे भी
पुरुष की सत्ता आ टपकती है
और कभी भी
उसक अबला होने का
लाभ उठा सकती है।

वह यह भी जानती है
कि सपना हो या यथाथ
पुरुष की माग पूरे बिना
उसकी माग
कभी भी भरी नही जा सकती।
इसीलिये अब वह
झोपडे मे निपट अकेली
यथाथ को भोगती है
और सपने टालती है।

o

हिसाब-किताब

त्रिलोक गोयल

ससार के गडबड हिसाब किताब पर
आडीटर ने हस्ताक्षर करने स साफ मना कर दिया !
जन्म मत्यु की बलेसशीट नही मिल रही है
इसलिय आब्जक्शन कर दिया !!
समझ मे नही आता यह घोटाला क्या है ?
मानवा की जन्मदर बढ रही है/मत्युदर घट रही है।
सुखा के कल्प वक्ष की जडें कट रही है ॥
लगता है कुछ दो नम्बर का हिसाब किताब है !
आत्मा की अमरता और पुनजन्म की मान्यता का
शाश्वत सिद्धान्त सवथा हो गया है फेल।
जितने मरेंगे उतन ही ता जन्मेंगे, यही तो है ईमानदारी का खेल !!
बहुत मगजमारी करन पर गलती पकड मे आइ।
जीव जन्तुआ के घटने और मनुष्यो के बढने से ही
सामने आइ है वह सच्चाई !!
आखिर आत्मा तो सभी मे है—
अस्तु विकासवाद क इस युग मे
जीव जन्तु मर मरकर मनुष्य योनि धारण कर रहे है।
अपने पूव जन्म के सस्कारो के कारण ही आज के इन्सान
मक्खी-मच्छर, खटमल पिस्सू साप छिपकली
सूअर साड, कुत्ता-गधा आदि के सदगुणो से भर रहे है ॥

o

मेरा शहर

हनुमान दीक्षित

हर अजनबी को पगलाया सा दिखता है मेरा शहर
मगर चन्द दिनों में उसे पागल बना देता है मेरा शहर
समय को नहीं देता दोष
मगर मजबूर पर कहर ढाता मेरा शहर,
इतनी भीड़ है कि आदमी का दम घुटता है
फिर भी, हर किसी को अकेला
फकत अकेला भटकाता है मेरा शहर,
पहली तारीख के शहशाहों को
आखिरी तारीखों में
उधारी पर जीना सिखा देता है मेरा शहर,
कितने ही जवान चेहरों को
न जाने किस कदर
झुर्रियों से भर देता है मेरा शहर,
'मैं इस शहर को खूब जानता हूं'
कहने वालों को
पहचानने से साफ
इन्कार कर देता है मेरा शहर,
अनगिनत खरीदने आये थे इसे
मगर एक एक कर
सभी को बेच, खा गया मेरा शहर।

०

सिर्फ आंकड़े बता-बता,
जग को झांसा दे सकता है।
किन्तु ईश्वर से डरो, मूर्ख।
जो नजर सभी पर रखता है॥

मैंने क्या किया बुरा तेरा,
फल फूल औषधियां दीं तुझको।
अन्तिम संस्कार समापन तक,
तेरी अर्थी को दी लकड़ी॥

पर भूल गया एहसान सभी,
तू है कृतघ्न।
है दूर नहीं वो दिन जब तू,
तरसेगा सांस-सांस खातिर।
पर सिर्फ कार्बन गैस तुझे,
बेचैन करेगी तड़फाकर॥

०

तुम स्थापित हो
पत्थर की विशाल
चट्टान की तरह
आदि अनादि काल म

और यहा फिर तुम
हार जाते हो

कि मैं एक देह
जो बदलती है
मरती भी है
किन्तु गतिशील है

निरंतर जल के
प्रवाह की तरह

और तुम—
तुम मात्र हाथ मलत
रह जाते हो
मेरे स्रष्टा

क्या इस तरह—
मैं हार कर भी
जीत नही जाता ?

क्या इस तरह
तुम जीत कर भी
हार नही जाते ?

मेरे—पिता
सृष्टि रचयिता

०

मन स्थिति

अजना भटनागर

हम सब हो गये हैं
गुमराह
भटकते हुए मन प्रागण मे।
विचारो की गहनता मे
कुछ भी तो हाथ नही लगता,
कुछ भी तो नही—
शब्द उड जात है कपास के फाहा से।
शायद
बुद्धि ही पगु हो गयी है
या फिर
मन प्राण की चेतना हमने खो दी है
शब्द ने अय खो दिय
और भाव फटे चिथडे से
लटके हैं प्रश्न की सलीब पर
ऐस प्रश्न—
जिसका कोई हल नही,
कोई मूल्य नही।
और हम दख रहे है
पथरायी हुई आखो से
अपने को ही बेमानी होने के करीब पहुचन तक
जहा से हर राह चुक जाती है
हर दिशा बदल जाती है
जहा कुछ भी शेप नही हागा, कुछ भी नही,
सिफ बासो पर लटके हुए हम।

०

धूल और धुआ

श्रीकृष्ण विश्नोई

धूल !
ठोकर खाती है,
उडती है—
फिर कही जाकर,
बैठ जाती है—
किसी बेवफा की तरह ।

पर धुआ !
घुटता है,
उडता है,
फिर कभी लौटकर
नही आता—
गये विश्वास की तरह ।

०

उजियारो का आदी हू

बुलाकीदास बावरा

तुम्हें धुधलके प्यारे हैं मैं उजियारो का आदी हू
अन्तर की आवाज सुने, उन उणियारो का आदी हू ।

चमक-दमक की हाटें ही ऐ दोस्त ! तुम्हारी थाती है,
क्या करू गलिया को लेकर, मैं गलियारो का आदी हू ।

भटकावो की डचोढी चढ तुम पचम स्वर का स्वाग रचो,
जिनके सत् स्वर आन को, मैं उन तारो का आदी हू ।

गुलमोहर-गुलबासा की निगरानी तुम किय रहना,
मैं बबूला के कण्टकमय व्यवहारो का आदी हू ।

तस्वारें लो घोघो की तुम, तट के भोगी जोगी जो
मैं लहरो पर हो सवार, उन असवारो का आदी हू ।

पहन समय की पजनिया तुम रगरलिया म लीन रहो,
दग्ध रूप मैं, प्रबल ताप की बौछारो का आदी हू ।

पर किरणो का हामी जो मैं कथा दधि-जात नही,
स्वय प्रकाशित होत जो, उन आकारो का आदी हू ।

०

सघर्ष

विजयसिंह राव

सघर्ष प्रगतिशील जीवन है।
जिसका मार्ग प्रदर्शन
तन
और धन नही
मन करता है।

प्रगति का तात्पर्य
जीवन का उत्कर्ष
उसी का नूतन नाम—
सघर्ष ॥

सघर्ष रहित जीवन से कोई
प्यार नही।
जो नर
सघर्ष नही कर सकता
उसे जीने का अधिकार नही ॥

प्रगति का पथ सघर्ष से
आलोकित होगा।
आओ हम सब मिलकर
जीवन को सवारे,
सजायें गुलाब काटा

म खिलकर महकता है,
रसमय जीवन ही
पर्याय है, सघष का
रुको मत ! चलते रहो,
सघष ही जीवन है।

०

तुम्हारे आने तक

मदाकिनी काले

हमे पता है,
तुम आसमा से बात करत हो,
हवा म तरत हो।
पर तुम्ह नही मालूम,
धरती पर चलने के लिये,
'बिस्कुटी' सडका पर, 'काली आइसिग'
की जाती है।
तुम्हारे पैरा तले की जमीन,
खिसक जाती है।
तुम स्वागत-आगत म मगन हो जात हो।
तुम्हारे लौटन के साथ ही,
आसमान सूखी धरती हो जाना है
तुम्हारे वापस आन तक।

o

पूर्ण-विराम

गिरवरप्रसाद बिस्सा

चाहते हो यदि
जीवन म कुछ करना
चलते रहो निरन्तर अबाध गति से
पीछे कभी न मुडना
क्योंकि भूल जाओगे अपन लक्ष्य को
उदय होगा
तुम्हारे मन के नागन मे अविश्वास का
सुनने पडेंगे लोगा से
तिरस्कार भर शब्द
और यादें घेर लेगी तुम्ह
असफलताओ की
जिनसे कभी न बढेंगे
तुम्हारे उत्साही कदम
आग बढने की अपक्षा
पहुच जाओग वही पर
जहा से शुरू किया होगा
जीवन का अभ्यास
और आयेगा जीवन मे एक विराम
जो तुम्हारे जीवन का
अध्याय समाप्त कर
बन जायेगा जिदगी का
पूण विराम ।

o

अहसास

सरला भूपेन्द्र

आज मन उजडा-उजडा क्या है
आज पलकें तन क्यो रही हैं
मेरे अस्तित्व के चारो तरफ
तोहमत का सरअजाम क्यों है
मगज में क्या-क्या आता है
मैं हर पल लघुतर क्यों कर बनायी जा रही हू
यह घुप्प अंधेरा मेरे दरवाजे ही क्यो खडा है
अनजान कोलाहल क्या डरावना लगता है
निस्सीम झुरझुरी-सी क्या छूट रही है मुझमे
मेरी निजता चुक क्या गई
इस चौखट और उस समदर के द्वार के बीच
एक बहता दरिया इस जगह आकर क्या सूखने लगा है
नाचीज मगर बहुत कुछ मेरा अपना ससार
मिठास भरी दुनिया रिस क्या गई
भीतर-भीतर बहुत कुछ धरधरा रहा है
चरमरा रहा है।
जिन्दगी के बोझ का बढते ही रहना
गडड-मड्ड कर रहा है मेरे समस्त परिवेश को
मुर्दनी का अहसास आहिस्ता आहिस्ता
थाह पा गया है
अचानक सब कुछ लील गया है मेरा यह अहसास
मेरी पूरी दुनिया को।

०

गजल

अरविन्द चूरुवी

वक्ष है इसानियत के पाव, इन्ह मत काटो,
दत है प्राण फल छाव इन्ह मत काटो।
गावो को पालते है वक्ष ये सब जानत है,
शहरा को पालत है गाव इन्हें मत काटो।
कोयल-पपीहा मोर गाकर मना करते हैं,
काक दल कह काव-काव इन्हे मत काटो।
भूमि हमारी माता है हम पुत्र हैं इसक
य रोकगे भूमि का कटाव इन्ह मन काटो।
इनको काटोग ता सब जीव उजड जायेंगे,
उखड जायेंगे ठौर ठाव, इन्हे मत काटो।
डाल की सारगी पर पवन 'गुनगुनाती है,
य करते सबका दिल बहलाव इन्ह मत काटा।
हरी पट्टी का 'एण्टीना पकड के बादल को,
कराता है बहुत छिडकाव इन्ह मत काटो।
धरती का कसर ओजोन छतरी-छेद है,
इन्ही से सम्भव है बचाव इन्हे [illegible] काटो।
ये धुआ सभ्यता का [illegible] छोडेगा,
कठिन आसजन बिना नि[illegible]।
आबादी घटाओ और व[illegible]
यही है [illegible] तो सुझाव [illegible]

०

अध्यापक

जयपाल सिंह राठी

मुझे वे
मानवता
निष्ठा से
नग्न
अतीत के सम्मान
वतमान व वैभव का लालची
तुच्छ स्वार्थी
कम के प्रति निष्ठर
प्रत्यारोपी
हड़ताली
कहने लग है ।

मैं
इच्छाओ से अतृप्त
प्रक्षेपी
भयभीत
एकान्त म साचता हू
कि
मैं वही अध्यापक हू ।
०

गीला शब्द

करन सिंह 'बेसर'

दिमाग की
दराज मे
पडा
गीला शब्द
दबाया
ऐंठा
मरोडा निचोडा
रस के लिए
पर
गीला शब्द
होता गया
शुष्क और
नीरस।
खीज
दे मारा
पत्थर-सा
पत्थर पर
फूट पडी
धारा रस की
भीग गया
पत्थर ।

o

उपेक्षित कन्या

मोती 'विमल'

मैं सोच रहा रहा था
बालक की
पर कन्या है।
हक्लाया-सा घूम रहा
मैं दरवाजे आग,
था सतति गह,
भनक पड़ी कर्णों मे
रुदन हुआ बच्चे का
पूछा क्या है ?
दाई बोली, सौभाग्य तुम्हारे
आई कन्या है !
हैं ?—खिन्न हो गई
मुख मुद्रा मेरी
लम्बी नाक सिकोडी
बोला, मैं सोच रहा था
बालक की, पर अब क्या है ?
बूढी मा बोली
'बेटा आखिर कूकू कन्या है
न बैठ सकी वह गूढ बात,
बिन देखे मुख बाला का
जो अबोध थी, ईश रूप थी—

रुख और ने मुख को मोड़ लिया।
अब दासी किसका उद्धारे
न दिखता विधि का दोष कहीं
न पतिव्रता सुनारी का।
दोष उसी मानव का है जो न अपनाये
और जिसने अतीत के अन्धकारमय
पृष्ठों में रच डाले सामाजिक बन्धन
लेन-देन व्यवहार चाँदी के टुकड़ों का
गर नहीं तो मैं—'पूछ रहा हूँ
मानव के शुभ्र भाल नारी
'कालिख' क्यों उपस्थित कन्या है?

०

वारिस

माधव नागदा

बच्चा जब बढ़ता है
पिता अपने व्यक्तित्व को
पुनः गढ़ता है।
बच्चे का किलकना-कूदना
लगता है उसे अपना किलकना-कूदना,
बच्चे का खतरों से खेलना
भर देता है उसमें अन्तस का रिक्त कोना।
नन्हा बच्चा
पेड़ पर चढ़ता है
भयभीत मां पुकारती है पति को,
रोको वह गिर जायेगा
नीचे नुकीले पत्थर हैं।
पिता देखता है
उसकी आंखों में चमक दौड़ जाती है
पत्नी के कंधे पर हाथ रख
हौले से कहता है—
प्रिय, उसे चढ़ने दो
जो काम हम नहीं कर पाये
उसे करने दो
जो गिरने से डरेगा वह ऊपर कैसे उठेगा?

o

पक्षी

केशव आचार्य तरंग

पक्षी दिन भर काम म जुटे है,
क्या उनको अपने अपनो की परवाह ?
जनम-मरण, लेन-देन, रीति रिवाज, खान-पान,
बेटा-बेटी, ग्याति-सगति, आज-कल आदि ।
ऐसे ही मानव की, थातियो का रखल,
नहीं, पक्षी तो केवल पथ द्रष्टा है ।
आज जन्मा कल व्योम उडान—
नीड का निर्माण तिनको से
आज का दाना पानी आज, कल का ठिकाना नहीं,
न तो है यहा भण्डारन, न हवाई बगले ही ।
कुबेर का खजाना कौन चाहे ?
क्योंकि ये सभी नश्वरता की ओर
आज का बसेरा केवल डाल की जुगाड पर है
इस आकाशीय उडगण का कल क्या होगा पता नहीं ।
इसी भाति हमे भी पक्षी-सा जीवन मिला है
और हम चाहते है सभी थातियो को,
वो भी आने वाली पीढी के लिये ।
औ कहते है इसी प्रकार गुजारा है आज का कल का
मानव के आर्थिक जुगाड का ।

o

बेटा इसी वतन का है

तारासिंह

भात भात का रग लिए, हर फूल इसी गुलशन का है।
कितनी बोली बोलें भले, हर पछी इसी चमन का है॥
लकडी हो चाहे किसी पेड की, रग तो एक अगन का है।
जिस रुइ का बना पोतडा, धागा वही कफन का है॥
धरती को ता बाट लिया पर, ढाचा एक गगन का है।
एक रक्त सबके भीतर, भिन्न भिन्न रग बस तन का है॥
कश्मीरी हो या मदरासी, बेटा इसी वतन का है।
कौन है अपना कौन पराया, भेद भरम का, मन का है॥
बाहर तो चौकस रहते हो, घर का भीतर सभालो तुम।
जितना घाव किया अपनों ने, उतना कब दुश्मन का है॥
०

नया मोड़

प्रकाश तातेड़

पतझड़ में
ठूंठ बनी शाखें
फिर से हो जाती हैं हरी-भरी।
सूखे झरनों और नदियों में
पावस के वरदान से
लौट आता है जीवन।
सुख-दुख, धूप छांव
कभी स्थायी नहीं रहते
ये घटते-बढ़ते हैं
चन्द्रकला की तरह।
बदलते रहते हैं
ज्वार भाटे की तरह
तब मानव-समाज में
कहां से आया
यह अन्तहीन वैधव्य
और आजीवन कारावास ?
काश ! हम
प्रकृति के प्रतिमानों से
कुछ ग्रहण कर पाते,
जीवन की विषमताओं को
नया मोड़ दे पाते !

०

शिक्षक तुम्हे बदलना होगा

पारसचन्द जैन

शिक्षक तुम्ह बदलना होगा
अब तक दीपक बन जल रहे तुम,
अब बनकर सूय
नये क्षितिज पर तुम्ह चमकना होगा।
नित नये परिवतनो की वेला म
आशा को सजोये रखना होगा।
अब तक रह केन्द्र म शिक्षा के तुम
अब बालक को लाना होगा।
अब तक केवल सक्रिय रहे तुम
अब बालक को क्रियाशील बनाना होगा।
शिक्षण की नीरस विधियो को छोड,
नई, रुचिकर विधिया अब अपनानी हागी।
जडता छोड, चेतन अब तुमको बनना होगा,
नये नवाचार अपनाकर,
राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सफल बनाना होगा।
शिक्षक तुम्हें बदलना होगा।
o

बस कविता

ब्र ना कौशिक

इस धूप छाव के/खेल से
मुक्ति के लिए/तडपता मैं
सोचता हू/कितना अच्छा होता
अगर मैं/पूव होता
फिर तुम/सूरज/मेरी मर्जी से
निकलते/रोशनी के याचक।
राष्ट्रो को/मित्र और अमित्र मे
बाटता/सन्धि के नाम पर।
अब सोचता हू,
पश्चिम ही होता/तो भी कुछ होता
शाम को/दरवाजा खटखटाते
तुम्हारा स्वागत करता/जरूरत समझता।
कहलवा देता/ ? घर मे नही है
कब आयेंगे/पता नही है
तब मैं/जानता होता
पश्चिम के अलावा/तुम जाओगे भी ?
तब/मेरा दिन/तुम्हारी गज होती
और मेरी रातें/मेरी इच्छा
आखिर/धूप छाव का खेल
पूव-पश्चिम/न होते
तो/क्या होता ?
०

अति

ईब्राहिम खा सम्मा 'जालोरी'

अति हर चीज की होती है दुखदाई
अति स बचो, कहते है विद्वान् मेरे भाइ।
काय की अति सन्तुलन बिगाड देती है
कज की अति मानव को जीवित जलाती है।
अन्याय की अति म रावण का नाश हुआ
दुयोधन की अति से महाभारत युद्ध हुआ।
अति वर्षा दखो बरबादी का माग बनाती
जन धन की करती हानि, भूमि बजर बनाती।
अति शीत मे जन जीवन अस्त व्यस्त हो जाता
वद्ध और असहाय को चपेट म न रौद्र रूप बनाता।
अत्याचारो की अति से बहुए यहा जलती
कलकित होती मानवता बात है खलती।
परिवार मे सन्तानो की अति छीन लेती तरुणाई
बच्चे रुग्ण अभावा म पलते होती जग हसाई।
पति-पत्नी दिन रात एक करत, पूरी पडती न कमाई
खाने के पडत हो जहा लाले, कसे हो विवाह-सगाई।
समय की माग को जिसन ठुकराया पिछड गया भाई
सीमित बनाओ परिवार, बात है सबके मन भाई॥

०

कितना अच्छा होता

व्रजभूषण भट्ट

कितना अच्छा होता
यदि मैं—
फूल न होता,
न तितलियां बार-बार आ आकर मेरा रस शोषण करती
न हर पल शूल चुभन या डर रहता
न सुरभि खोता
कितना अच्छा होता—यदि मैं फल न होता,
कितना अच्छा होता
यदि मैं
सागर न होता,
न कोई बार-बार आ-आकर मेरा अमृत मथन करता
न कोई मेरे रत्न बटोरता
न कोई मेरे खारेपन को बदनाम करता
तट से प्यासा न लौटता
कितना अच्छा होता—यदि मैं सागर न होता,
कितना अच्छा होता
यदि मैं
कवि न होता
जिससे
पर पलकों पर आंसू लख अधरों पर प्यास परख
रोशनी को बदनाम न करता
पीडा के गीत न लिखता
कितना अच्छा होता—यदि मैं कवि न होता।

o

गहरे भेद

गणेश तारे

आख के आसू गर य साथी
बद नही रह पायेंगे
तो जीवन के गहरे भेद भी
भेद नही रह पायेंगे
अपन मोतियन को सम्हालो
व्यथ इह मत जाने दो।
अब तक लाखा लोग चल है
जग की कटीली राहो मे
किसका जीवन सारा बीता
प्रेयसी की ही बाहा मे
अध सत्य गर कोमल बाह
कटु सत्य ये राहे है
अपन कदमा को सम्हालो
भटक इह मत जाने दो।
कहने को तो सब है अपने
पर अपना तो कोई नही है
चाहे जिस इसा के आगे
दुख का रोना ठीक नही है
कुछ दुख को चुप रह कर—
पीने मे सुख की अनुभूति है
अपनी जिह्वा को सम्हालो
फिसल इसे मत जाने दो।
०

मौत के मुह मे पहुच गया जमाना

चचल कोठारी

आज हर तरफ
लूट-खसोट,
ईर्ष्या द्वेष
स्वार्थ का नगा नाच
इन्सान को इन्सान के हाथो
खौफनाक मौत देख
जान गया असलियत इन्सान की
रो पडा जमाना ।

याद करें वो दिन
रामराज्य के
खुशहाली थी चारो ओर
और आज
भाई भाई मे नही प्यार
भूख दरिद्रता का दृश्य
यह तेरा वह मेरा
आपस की
छीना झपटी के बीच,
मारो मारो की आवाज सुन
बेहोश हो गया जमाना ।

आज सब चल रहा,
अपने आप
झूठ, चोरी, अन्याय,
छल, कपट, दुराव,
कोई रोक टोक नही
कुचल गया,
सब के पैरो तले
आज मौत के मुह मे
पहुच गया जमाना।
०

वासती अनुभूतिया

जगदीश सुदामा

(1)
सफेद
शामियाने सी
शाम की धूप
शहर पर तनती है
गोया
सूरज की
बसत से ठनती है।

(2)
हवाए
पूछती है
मौसम मुसाफिर का नाम
तब हौले से
हिलाई शाख पर
खिलता है
कोई फूल।

o

शहर का रेला

चमेली मिश्र

कैसा है शहर ?
जहा पहचान नही आवाज की।
सभी शोर मिलकर
घनघोर हो गये।
विश्लपण कर देखनी पडती है
इन्सान की आवाज।
कान तो अभ्यस्त
हो गये—चीख पुकार के।,
अन्धकार की नही,
रोशनी की आदी
हो गई है आखे।
प्यार की नही,
घृणा की दीवार खडी हो गई है।
इन्सानियत की नही
पशुता की प्रवत्ति पनप रही है।
इन्सान ही कुचल जाता है,
फिर चीटी की बिसात क्या ?
देखता नही कोई रुक कर।
चलता रहता है—
शहर का रेला।

o

सड़क और हम

जितेन्द्रशेखर बजाज

बड़ी ही अच्छी लगती है/पक्की
काली/और लम्बी
कोलतार वाली सड़क परन्तु
बहुत बुरा लगता है
हमारा कोलतार हो जाना।
सड़क/दूर तक,
अपने आसपास
वृक्षों की छाया समेट/लोगों को बताने के लिये मार्ग
जमीन पर लेट होती है।
क्या?
हम भी द पाते है मनुष्यों को ठंडी छाँव/बजाय
उनके पावों की धूल/छोड़कर मानवता के
उन्हे को कर धराशायी
उनके वक्ष पर द जाते है पाव,
हम
भड़कीले वस्त्रों मे सजे/सुन्दर/धनी
और तीव्र बुद्धि वाले है
परन्तु
आप मानें या न मानें
अपनी-अपनी जगह पर/कोलतार से
सौ गुना ज्यादा काले हैं।

०

मनुष्य

नारायणकृष्ण 'अकेला'

आग और धुआ है जहा
आदमी है वहा
वह टकराता है पत्थर
तो फूटती है आग
वह जलाता है पत्ते
या घास फूस
तो उठता है धुआ
वह पकाता है इट
या मिट्टी के बतन
वह बनाता है नागासाकी
या हिरोशिमा
और दहकती है आग
छिड जाता है
प्रलय का राग
वह करता है आक्रमण, अतिक्रमण
जलाता है घर
खेत, खलिहान
उठाता है इट के मकान
और कहलाता है महान !
आग दिल की हो या दिमाग की

सडक और हम

जितेन्द्रशकर बजाड

बडी ही अच्छी लगती है/घनी
काली/और लम्बी
कोलतार वाली सडक परन्तु
बहुत बुरा लगता है
हमारा कोलतार हो जाना।
सडक/दूर तक,
अपने आसपास
वृक्षो की छाया समेटे/लोगो को बताने के लिये माग
जमीन पर लेटे होती है।
क्या ?
हम भी दे पाते है मनुष्यो को ठडी छाव/बजाय सहने को
उनके पावो की धूल/छोडकर मानवता के उसूल।
उन्ही को कर धराशायी
उनके वक्ष पर दे जाते है पाव,
हम
भडकीले वस्त्रो म सजे/सुन्दर/घनी
और तीव्र बुद्धि वाले हैं
परन्तु
आप मानें या न मानें
अपनी-अपनी जगह पर/कोलतार म
सौ गुना ज्यादा काले हैं।

o

मनुष्य

नारायणकृष्ण 'अकेला'

आग और धुआ है जहा
आदमी है वहा
वह टकराता है पत्थर
तो फूटती है आग
वह जलाता है पत्ते
या घास फूस
तो उठता है धुआ

वह पकाता है इट
या मिट्टी के बतन
वह बनाता है नागासाकी
या हिरोशिमा
और दहकती है आग
छिड जाता है
प्रलय का राग
वह करता है आक्रमण, अतिक्रमण
जलाता है घर
खेत, खलिहान
उठाता है इट के मकान
और कहलाता है महान !
आग दिल की हो या दिमाग की

या बारूद की
जलाती है।
धुआ घुटन का हो या प्रलय का
पोतता है कालिख चेहरो पर
धुआ-आग, चीत्कार ध्वस
क्या यही है परमात्मा का अश ?
मनुष्य भी अजीब है
वह देवताओ के गीत गाता है
और कम करता है दैत्यो के
वह दो सीमाओ के बीच खिची जरीब है
शायद इसीलिये दानो के करीब है।
तगी
तन की हो या मन की
सभी को परेशान करती है।
तग गलिया
तग दरवाजे
तग मकान
तग दिमाग
तग दिल
किसे करते है निहाल ?
फिर भी लोग
खुलते नही
खुलने का स्वाग करते है।
नफरत या खुशामद से
भरते है—
खाली झोलिया
जो खुद भिखारी है
वह दूजे को क्या देगा ?
कुछ देने लायक होना हो
तो सम्राट बनना।
लाजमी है।

दीप वह जलता रहेगा

ज्ञानसिंह चौहान

नेह गर तुमसे मिले तो,
आंधियां भी क्या करेंगी ?
पीठ पर गर हाथ तेरा,
शतरूप होकर ये जलेंगी।

हा गया जा प्रज्वलित
दीप वह जलता रहेगा।

मिल जाय गर तेरा समर्थन,
काल से दो बात कर लू।
और की तो बात ही क्या,
तम निशा को बाह भर लू।।

हा गया जो प्रज्वलित,
दीप वह जलता रहेगा।

युग बदल जायें भले ही,
पर न रस की बात बदली।
ठूठ भी गर छू गया,
हो गया वह सरस कदली।।

हो गया जो प्रज्वलित,
दीप वह जलता रहेगा।

नेह तन पर है तीर सहता,
नेह तन अपना जलाता
यों नेह का ही नेह देखा,
धार के प्रतिकूल चलता।

हो गया जो प्रज्वलित
दीप वह जलता रहेगा।
०

मन

रमेश मयंक

प्रकाश की किरण
चाहती है
हर देशवासी का मन
बन जाए
एक चौराहा
जहां आकर मिलते हों
देश-प्रेम
कर्त्तव्य-परायणता
समता
और
सदाचार के चार रास्ते।
०

बरसात

दशरथ कुमार शर्मा

रामू की भाभी की, कस्बे से चिट्ठी आई है
बहुत समय के बाद ।
लिखा है अब की भरपूर पानी बरसा है
बहुत समय के बाद ।
आगन की मेहदी, तन कर खडी हो गई है,
अपनी गौरी भी एकदम से बडी हो गई है,
उसका भी गौना, अब जल्दी करना होगा
ससुराल से उसके चिट्ठी आई है,
बहुत समय के बाद
अकाल राहत के सभी काय ध्वस्त हो गये है,
सरपच, दरोगा और पटवारी
फिर स व्यस्त हो गये हैं
तुम्हारे भैया भी,
अब की बाडा और बढायेंगे
मेरी बहना को भी,
उसके घरवाले आग और पढायेंगे
मन-मयूर फिर जागा है,
अकाल दुम दबाकर भागा है
बहुत समय के बाद ।
कस्बे की माटी म सुगध आ गई है
लगता है पूरी प्रकृति जम दूध स नहा गई है
गगू के खेत पर पत्ते भी नहीं हिन हैं

तुम्हारे मित्र से नाम विमला ने नहीं मिटा है
सब कुछ सुन्दर सा लगता है
बहुत समय के बाद।
अन्तिम पंक्तियाँ लिखते लिखते
न जाने क्यों हाथ काँप गया है
राजू के मन की बात भाँप गया है
लिखा है शहर से समझौता मत कर लेना
अपनी किसी सहपाठिन से ही मांग भर लेना
अन्यथा अनर्थ हो जायेगा
हम सबका बलिदान व्यर्थ हो जायेगा
न फिर मैं अपने पीहर में मुँह दिखाऊंगी
तुम क्या जानो मैं जीते जी ही मर जाऊंगी।
•

बरसात

दशरथ कुमार शर्मा

रामू की भाभी की, कस्बे से चिट्ठी आई है
बहुत समय के बाद ।
लिखा है अब की भरपूर पानी बरसा है
बहुत समय के बाद ।
आगन की महदी, तन कर खडी हो गई है,
अपनी गौरी भी एकदम से बडी हो गई है,
उसका भी गौना, अब जल्दी करना होगा
ससुराल से उसके चिट्ठी आई है,
बहुत समय के बाद
अकाल राहत के सभी काय ध्वस्त हो गये है
सरपच, दरोगा और पटवारी
फिर से व्यस्त हो गये हैं
तुम्हारे भैया भी,
अब की बाडा और बढायेंगे
मेरी बहना का भी,
उसके घरवाले आगे और पढायेंगे
मन-मयूर फिर जागा है,
अकाल दुम दबाकर भागा है
बहुत समय के बाद ।
कस्बे की माटी म सुगध आ गई है
लगता है पूरी प्रकृति जैसे दूध स नहा गई है
रामू के करल पर पत्ते भी नही हिल हैं

तुम्हारे मित्र के गोत्र विमला स नहीं मिले हैं
सब कुछ सुन्दर सा लगता है
बहुत समय के बाद।
अन्तिम पंक्तियां लिखते-लिखते
न जानें क्या हाथ कांप गया है
रामू के मन की बात भाप गया है
लिखा है शहर से समझौता मत करना
अपनी किसी सहपाठिन से हां मत भरना
अन्यथा अनय हो जायगा
हम सबका बलिदान व्यर्थ हो जायगा
कैसे फिर मैं अपने पीहर में मुंह दिखाऊंगी
तुम क्या जानो मैं जीते जी ही मर जाऊंगी।
०

ओ, चिर-सुन्दर

रजनी कुलश्रेष्ठ

जीवन के संवेद्य क्षणों को
तुम वाणी दो
ओ, चिर-सुन्दर!
नव-नव रूप, गन्ध से भरकर
मेरे गीतों को स्वर दो
ओ, चिर-मानव!
स्फोट ध्वनि से मुखरित प्रज्ञा में
नव शिल्प का वैभव भर दो
ओ चिर-नूतन!
ऐसा मोहन राग सुना दो
मेरे अन्तरमन के गायक!
बन्धन छिन्न कर
स्वातिबुंद बन
आलोक लुटा दो
ओ ज्योतिर्मय!
अपने स्नेह-धार से पूरित
मानवता को कर दो
मधुर-निनादित
ओ, चिर-सुन्दर!

एक हकीकत

सुभाष चन्द्र शर्मा

चारो ओर कोलाहल है
लोग भागे जा रहे हैं बेतरतीब
मैं,
सडक पर खडा,
आत्म विस्मृत सा,
ताक्ता अधी दौड,
तभी,
पुलिस का सिपाही
ले जाता धकेल कर एक ओर
जहाँ मच पर कोई चिल्ला रहा है—
मैं उसी के वाक्य मे खोकर
घुल जाता हू, घुल कर बह जाता हू,
'हम भेड-बकरिया हैं'
हम आजीवन हाके जात है
मास्टर के डण्डो स
बडे होकर पुलिस या सेना
क डण्डो से
चाहे तानाशाही हो या प्रजातन्त्र
हम सब हाके जाते है।
क्याकि हम खुद, अपने आप
भेड बकरिया बन जाते है।

०

ओ, चिर-सुन्दर

रजनी कुलश्रेष्ठ

जीवन के सवेद्य क्षणा को
तुम वाणी दो
ओ, चिर-सुदर !
नव-नव रूप, गध से भरकर
मेरे गीतो का स्वर दो
ओ, चिर गायक !
स्फोट ध्वनि से मुखरित प्रज्ञा म
नव शिल्प का वभव भर दो
ओ, चिर-सजक !
एसा माहन राग सुना दो
मेरे अतरतम के गायक !
तमस छिन कर
ज्योतिपुज बन
आलोक लुटा दो
ओ, ज्योतिमय !
अपने नेह राग से रजित
मानवता को कर दो
मधुरस सिचित
आ, चिर मधुमय !

०

एक हकीकत

सुभाष चन्द्र शर्मा

चारो ओर कोलाहल है
लोग भागे जा रहे है बेतरतीब
मैं,
सडक पर खडा,
आत्म विस्मृत सा,
ताकता अंधी दौड,
तभी,
पुलिस का सिपाही
ले जाता धकेल कर एक ओर
जहाँ मच पर कोई चिल्ला रहा है—
मैं उसी के वाक्य मे खोकर
घुल जाता हू, घुल कर बह जाता हू,
' हम भेड-बकरिया है'
हम आजीवन हाके जाते हैं
मास्टर के डण्डे से
बडे होकर पुलिस या सेना
के डण्डो से
चाहे तानाशाही हो या प्रजातन्त्र
हम सब हाके जाते हैं।
क्योकि हम खुद, अपने आप
भेड बकरिया बन जाते है।

०

जीवन कहानी

सीताराम व्यास 'राहगीर'

न जाती वही जवानी है
जीने की यही रवानी है
क्षण म जिनकी यादें बीत
यह मानव तेरी कहानी है।

बसत बगिया सजाता है
अम्बर आह भरता है
पवन चवर ढुलाता है
यह नियति तरी कहानी है।

रजनी सेज सजाती है
चदा अमृत बरसाता है
प्रेयसी बाहा का झूला
यह अनुराग तरी कहानी है।

चेतन जब मुस्कराता है
उदास मन हरपाता है
आक्रोशी लहरें थमती हैं
यह जीवन तेरी कहानी है।

कभी कभी यह मिटती है
रूप बदलती रहती है
स्वय के जीवन म ढलती
यह जीवन तरी कहानी है।

o

बच्चे

रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश'

पाठशाला से आते ही
उन्होंने जूते फेंके
कपड़े बदले
किताबें फेंकी, बस्ते फेंके ।
बच्चे आजाद हैं
दुनिया आजाद है ।
बदल रही है दुनिया
बच्चे बदल रहे हैं ।
पता नहीं—
कौन किसे बदल रहा है ?
कौन जाने ?
कितने आजाद और होंगे ?
बच्चे—
कितनी और भी बदलेगी दुनिया ?
कि—
संस्कार बदले हैं,
संस्कृति बदली है ।
खेल बदले हैं,
औजार बदले हैं ।
रूप बदले हैं—भूप बदले हैं,

और बदन हैं
इरादे इच्छायें
कोशिशें, कानून-कायदे
इंतजार और वायदे
बदलेगी अभी और भी दुनियां
क्योंकि—
वक्त बदल रहे हैं।
०

बरगद का पेड

रमेशचन्द्र पारीक

गाव किनारे
सीना ताने हरा-भरा
भारी विटप खडा है
गाव की सुखद पहचान बनकर।
सूरज की उष्ण रश्मियो की
चुनौती को स्वीकार करते हुए
धैर्य-साहस निडरता का
सच्चा प्रतीक बनकर।

गाव के सारे ढोर
गुजारते है दोपहर
वर्षों पुराने बड के नीचे
तपते रवि
जलती धरती से
राहत पाते है निर्भीक।
गाव के सूखे हैं तीनो ताल
मगर कायम है बरगद की हरियाली
स्थल जीवो, नभचरो के लिए
सहस्रा विहगो का नीड है उस विद्रूप मे।

बरगद का पेड धरती चूमती
असख्य सलौनी जटाओ से

बस्ती के अबोध, नाबालिग
झूला झूलते, कबड्डी खेलते
शीतल छाया नीचे बालू रेत में।
आख मिचौनी खेलते
लचीली झुरमुट शाखो की ओट म
प्रमुदित भाव से।
पक्षी अगणित किलोल करते हैं मन भर।
लालिमायुक्त नव कोपलें
नव पल्लवो के सग
शृगार करती है जी जान से।

सब हैं वाकिफ
बूढ़े बरगद की उदारता,
सहिष्णुता, सेवा, सयम से,
विटप की गुणवत्ता
सभ्यता-सस्कृति के आदश से।
कुछ मनचले है मशगूल
शाखाए काटने की उधेड़बुन म।
कुछ सिरफिरे हैं नादान, बेचैन
पैनी विभेदी कुल्हाड़ी
कमजोर हाथो मे थामे
समूल नष्ट करने के लिए
बरगद के पेड को—
जिसने सदियो के इतिहास
काल को देखा, समझा, भोगा।

समय मवसे वडा लुटेरा

निशान्त

समय सवस बडा लुटेरा है
सबसे पहल यह हमसे
मधुर बचपन छीनता है
बाद म गर्वीली जवानी
मा-बाप
यह बडा इस मान भी है कि
जब यह छीन रहा होता है
हम आभास नही होता
आभास तभी होता ह
जब सब कुछ
लुट चुका होता है ।

o

व्यथा

अरनी रॉबर्ट्स

इसमे बढकर
व्यग्य और क्या हो सकता है कि
मेरे दद की इतिहा को
वे कहानी कहते है
हादसो की शक्ल मे मिली
जिंदगी की बख्शीशें
उनके लिए कथानक ह,
हर वार तलवार सी चलती है
उनकी लेखनी
मेर व्यक्तित्व पर, जिसस
जख्मी नही होता जिस्म
पर हर पल रिसता है दद
और यह अहसास, कि
'अमरवेल हात है कुछ लोग
वे बाते करते ह सूखे पेड़ की
कारण और प्रक्रिया की नही
निदान है ही नहीं
वे मसीहा ह
मैं आम आदमी ।

०

गीत प्यार के गाते जाना

ओमप्रकाश सारस्वत

हर तरफ हो अधियारा पर वीर तुझे है बढते जाना,
आखिर हारगा अधियारा, इसी सत्य को सबने माना।
विषम परिस्थिति, दुगम माग, तुमको नही य रोक सकेगे,
चलन की हो दृढ इच्छा तो सदा चलोगे सदा चलेगे,
झूठ कपट की नगरी म भी गीत प्यार के गाते जाना।
आखिर हारगा अधियारा

पाचो पाण्डव फिर मही पर पर अविरल जूझे विपदाओ से,
समय फिरा फिर मिला उन्ह भी 'मुक्ति पत्र' सब बाधाओ से,
दिन को व ही जान सकेंग, जिनन निशि को है पहिचाना।
आखिर हारेगा अधियारा

नेहरू, गाधी और उनका महापुरुषो न हम कहा है,
सुख को, सुख वो ही समझेगा जिसन दुख को कभी सहा है,
कम करो यह कहा कृष्ण न, यह ससार है आना जाना।
आखिर हारगा अधियारा

दुविधाओ को दख डरो मत य है सुख की परछाई,
हिम्मत रखकर डट रहो, बस यही अटल सत्य है भाई,
आखो में चाहे आसू भी हो, पर गीत प्यार के गाते जाना।
आखिर हारेगा अधियारा

०

जीवन सध्या

राधाकिशन चादवानी

मेरे जीवन की सध्या से
कितनी मिलती जुलती है
मेरे आगन की
यह सध्या ।
आगन मे फले
अधेरा के छोट-छोटे टुकडे
फलकर खा जाते हैं,
धुधले धुधले उजालो को
जसे,
मेरे जीवन की धूप को
निगल गया है
बुढापे का फैलता अधेरा ।
मेरे जीवन की सध्या से
कितनी मिलती जुलती है
मेरे आगन की
यह सध्या ।
०

तीन क्षणिकाएं

रामनिवास सोनी

जिंदगी

दो पाटो के बीच
साबत बची
सासा की ढेरी।
भरोसा क्या ?
न तरी
न मेरी।

अकाल

समय की शिला पर
टूटे निब से लिखा
आसू भरा
एक रक्तवर्णी गीत।

ईश्वर

काल के गाल पर
एक ऐसा तिल
जिसे मानो तुम
कभी शुभ
कभी अशुभ।

०

दद को धुरी की तलाश

उषा किरण जैन

जख्म
उजाड देते हैं भ्रम को
भ्रम उजाड देते है मम को
मम के उजड जाने के बाद
शेप बच रहता है—
केवल मात्र दद
दद और दद
दर्द जो जोडता है—एक-दूसरे को
दद जो समझता है—भाषा एक दूसर की
आओ हम तलाशें
दद की उस धुरी को
जिससे जुडते हैं हम सभी।

o

मरी हुई मछली के लिए नहीं

मनमोहन झा

वे पेशेवर हत्यारे थे/यदि मछली जैसी निरीह चीज
मारने को हत्या नाम दिया जाये/तो/व सब के-सब/
इरादतन/हत्या करने की ताक म बैठे थ ।
कुछ का शगल था शिकार/कुछ का व्यापार/कुछ का
महज मनोविकार ! शायद परायी छटपटाहट और
नशम हत्या के रूबरू होने म एक अजाना
उत्तेजक मजा है/और फिर
हर पेशे की एक अपनी अलग नैतिकता होती है
एक खोखला चमकदार जस्टिफिकेशन !
वे सब के सब
जलाशय के तट पर चारा लगाये काटा डाले
कातिल प्रतीक्षा/म बठे थे
मौसम का पोश पोश गालियां देते/एक दूसर को
थूथनो स सूघते आग्नेय नेत्रा से घूरते/एक की
उपलब्धि ही दूसरे के दु ख का कारण थी !
कुछ का ख्याल था हरामजादी मछलियां
आजकल बडी मक्कार हो चुकी ह/पर
हकीकत ता यह है कि मछलियां
खुद के सिवा किसी को भी नही छलती/यदि
चारे और काट को पहचान कर छिटक जाने को
मक्कारी का नाम नही दिया जाय/
जान बचाने के लिए काम चलाऊ होशियारी न हो
ता जलाशय के बाहर उछाल दिया जाना और

एक निजी छटपटाहट के बाद ठण्डे हो जाना
नियत है/और नियत है एक जान लेवा हादसे का
अकेले ही अकेल भोगना ।
व तुम्हे प्यार से भूनेंगे चटकार ले-लेकर
खायेंग/एस म ठीक-ठीक नही कहा जा सकता कि
दूसरी मछलिया/मरी हुई मछली क लिए
शायद ही कोई शोक सभा करती हो और अगर
करती भी हो/भी तो अक्सर ऐसे समारोह
महज राजनीति पर जाकर खत्म हो जाते हैं
शेम म/मत के शव के साथ अपनी तस्वीरें
उभारना या सजे-धजे शव/पर बैठ यात्रा
खुशहाल कर लेना ही मकसद हो जाता है
इससे/जलाशय की निमम व्यवस्था पर
कोई फक नही पडता और मानलो
नाटकीय सन्दभ म/कोई फक पडता भी हो
तो भी/मरी हुई निरीह मछली के लिए तो
कोई भी फक नही पडता क्योकि
सही अथ म पीना अहस्तान्तरणीय
दस्तावेज है ।
जलाशय की अधिकाश मछलिया या तो
मूख है या अवसरवादी ।
मरी हुई मछली के लिए
गम नही है/न सही
लेकिन जलाशय म
चारे और काटे की मौजूदगी
सभी क लिए खतरा है/केवल
मरी हुई मछली के लिए नहीं ।

o

मा और एक टुकडा धूप

श्यामसुन्दर भारती

सुबह
जब हम बच्चे थे
धूप उतरती थी गुलाबी
हमारे आगन मे
चहचहाती थी चिडिया
हिरनिया कुलाचें भरती थी
दौडते थे बछडे
दडबड दडबड

मा हम सबको
गुनगुनी धूप मे नहलाती
उजास की सूरत पूरे घर म
पसर जाती

दोपहर—
हिरनिया लें चुकी थी विदा
बछडे कोल्हू के बैल बन चुके थ
धूप बन चुकी थी आग
सुलगने लग थे घर आगन
आच से बचती बचाती मा
भाग रही थी इधर-उधर

शाम—
घर के चौक के कोने म
टाट के टुकडे पर
बठी है मा
अब वही बची है केवल
एक
टुकडा
धूप
०

नई रोशनी बाट दो

शशिकर 'खटका राजस्थानी'

उजियारा मुट्ठी म लेकर
पोर पोर म छाट दो।
गाव गली घर द्वार-द्वारे,
नई रोशनी बाट दो।

कितने हैं कुछ पता नहीं,
संघर्षों के साथ जुडे।
अभी करोडो दीपक है जो,
अंधियारे क रहन पडे।
लोह शृंखला मे जा जकडे,
उनके बन्धन काट दो।
नई रोशनी

झोपडियो मे आसू जब तक,
कहो महल से हस नही।
सिसकी उनके गले म तब तक,
लगा ठहाका हस नही।
उसके सारे दुख दर्दों को,
अपना करके पाट दो।
नई रोशनी

सफर अभी ता शुरू हुआ है,
क्या पावा म विराम है?
शूला का पथ पार करा फिर,
फूला वाला ग्राम है।
शूल बिखेर जो वसुधा पर,
उनको मिलकर डाट दा।
नई रोशनी
नई राशनी बाट दा,
नई रोशनी बाट दो।

आदमी बदल गया

श्रीमाली श्रीवल्लभ घोष

आदमी बदल गया,
मानवता को भूल गया।
आदमी को आज देखो,
लूट रहा आदमी।
भग, दारु, गाजा, चरस,
चढा रहा है आदमी।
पद के मद मे अधा होकर चल रहा है आदमी।
चाल से कुचाल चाल,
भाग रहा है आदमी।
राह चलते आदमी को,
धक्का दे रहा आदमी।
मा-बहनो की इज्जत से भी खेल रहा आदमी।
अपनो का रक्त बहाकर के,
खूनी बन रहा आदमी।
विश्वासघात कर आस्तीन
का साप बन रहा आदमी।
ढूढ रही मानवता अब तो,
कहा मिलेगा? आदमी।
सतयुग मे कलयुग तक आते,
बदल गया आदमी, खो गया है आदमी।

अभिनन्दन

सरोज चौहान

अभिनन्दन वन्दन लो हे मा,
श्रद्धा सुमन समर्पित तुमको।
लाई मै पूजा की थाली
मा वीणापाणि तुम वर दो।
अकिंचन मैं झोली खाली,
किन्तु प्रसन्न होकर हे मा तुम।
पूजन यह स्वीकार करो मा अभिनन्दन
विद्यादायिनी मातु भवानी
सब जग की तुम हो कल्याणी
गाऊ सुयश तुम्हारा निशि दिन
दो मुझको वह मजुल वाणी
अर्पित हो तुम्ह यह जीवन
अमल विमल बुद्धि दो हे मा,
भेंट अकिंचन स्वीकारो मा। अभिनन्द
विमल कीर्ति को कर प्रसारित
ज्ञान वाणी चहु दिशि गुजारित
अवनी म अम्बर तक हो नित
ज्ञान ज्योति नित नवल प्रकाशित
ज्ञानार्जन नानापण हित ही
मेरा जीवन अर्पित हो मा
अभिनन्दन वन्दन लो हे मा
अभिनन्दन वन्दन लो ह मा

०

समय का कैनवास

नीना भटनागर

यह हमारी जिन्दगी तो,
स्नेह, दोस्ती प्रेम, ममता,
मुस्कराहट, आसू, शम और दद,
आदि,
रग, बिरगे, चटकीले एव
बहु आयामी टुकडा की,
पैंचवक मात्र,
बनकर रह गई है।
और समाज क ठेकेदारो ने,
इसका फायदा उठाने के लिए,
इसको
समय के कनवास पर
किसी रग बिरगे,
कार्डिगन की तरह,
इस दुनिया की,
शो विन्डो म
लटका दिया है।
जिससे कि इसका
ज्यादा से ज्यादा मूल्याकन हो।
एव अधिक से-अधिक, मूल्य,
वसूला जा सके।

o

आदमी बनो

करणीदान बारहठ

(1)

आदमी से लगते हो यार
आदमी तो बनो,
तुम्हे वाणी मिली है,
तुम बोलते हो,
फिर प्यार की भाषा तो बोलो।
तुम्हारे पास चिन्तन है
शक्ति है, सामर्थ्य है,
फिर आओ, नवमानववाद का निर्माण करें।
किन्तु यह क्या ? तुम्हारी पूछ तो नही,
किन्तु सीग उग आए है।
इसकी तो शल्य चिकित्सा सभव है
अरे, इनकी तो जडें गहरी हैं,
तुम्हारे हृदय तक चली गई है।
हा, ये उखड जायेंगी,
किन्तु यहा तो काले काले पौधे और उग आए है।
ये सत्यानाशी के है, कही से बीज आ गए है।
य भी निकल जायेंगे।
फिर मैं यहा नव मानव के बीज डालूगा,
ये उगेंगे जरूर,
और फिर विकसित होगी नई पौधें
उगेंगे नये-नये वक्ष,

ऊंचे ऊंचे, दूर दूर तक
फैल जायेंगे।
पूरी मा वसुधा पर छाया होगी,
जिसके नीचे हम तुम सब,
बठेंगे, सौरभमय फूलो के नीचे
फल लगेंगे इसके
समानता के स्वतन्त्रता के
नृत्य करेंगे मयूर,
और गीत गायेगी कोकिला
फिर हम सब
आदमी की भाषा बोलेंगे
क्योंकि हम आदमी तो है ही।

(2)

अबे ओ कुत्ते,
क्यो भौंक रहे हो।
मैं भीतर प्रवेश करना चाहता हू
क्योंकि मैं आदमी हू।
तब कुत्ते ने कहा—इसीलिए तो मैं भौंक रहा हू।

(3)

बन्दर ने जब आदमी की
योनि मे प्रवेश किया,
उसने अपनी पूछ तो बाहर ही डाल दी,
किन्तु पूछ मरी नही
उसने भीतर की ओर बढना प्रारम्भ कर दिया
क्योंकि उसकी जडें अभी जिन्दा थी।

०

अधेरा

मुख्तार टोंकी

चाद तारे,
चमकते रहते है।
प्रकाशमान है दिवाकर भी,
हर सवेरा,
जो आदि से अब तक
तमस का शत्रु है
साथ अपने उजाले लाता है।
फश—
धरती का मुस्कराता है।
कितने सुदर हैं
फूल बागो मे।
रोशनी के सूचक है,
नूर ही नूर है चिरागो मे,
जगमगाती है
शम्मे महफिल मे,
मेर साथी!
मलाल है मुझ को
जो नही है तो रोशनी दिल मे
जिस तरफ देखिए!
अधेरा है
दूर तक अधेरा है

०

धूप घडो

भूपेन्द्र उपाध्याय 'तनिक'

हम लोग धूप घडी है
समय की चौखट पर खडी है
सूरज की हर धूप हम पर पडी है,
हमारी छाया के अधेरो को देखकर
लाग वक्त को पहचानते है
मौसम का मिजाज जानत है।
सूरज के डूबत डूबत भूल जात हैं, लोग
जब भी पौ फटती है
चिडिया चहकन लगती है
फूल पक पक कर डाल स टपकने लगत हैं
आसमान पर तज धूप चढने लगती है
हमारी छाया को ढूढने लगते ह।
वे ही लोग
काल-गति की गणना के प्रतीक हैं
हम लोग धूप घडी है।

०

मजदूर और मिस्त्री

ताराचन्द जैन

एक नगर सेठ था,
उसका भवन खण्डहर था।

कुशल मिस्त्री को बुलवाया,
नक्शा नया बनवाया।

पहले भवन गिराना था,
आधार समतल करना था।

मिस्त्री ने यह कहलाया,
गिराना मजदूर की है माया।

मजदूर चढा तीसरी मंजिल पर,
नष्ट कर आया दूसरी मंजिल पर।

यों करते-करते आया धरती पर
गिराने वाले का होता यही स्तर।

मिस्त्री निर्माण करने लगा,
पहले नींव भरने लगा।

पहली मंजिल बनी टनाटन,
दूसरी, तीसरी बनी धनाधन।

कुछ दिनों में पहुंचा आकाश तक
मिस्त्री की बोली जय जयकार सब।

मिस्त्री निर्माण करते हैं,
मिस्त्री पचास-साठ लेते हैं।

मजदूर गिराने का काम करते हैं,
इसीलिए रुपये पन्द्रह लेते हैं।
०



ऐ शिक्षक चुनौती सिर पर ले।
'उजाला' अविरल अश्रु से झोली भर ले।
बन युग प्रवतक,
मम गहन मर्यादा रक्षक,
शिक्षक मसीह कम से बने महान।

o

आज सरस्वती मागती दान

सोहनलाल सिगारिया 'उजाला'

आज सरस्वनी मागती दान ।
धरा जन्मभूमि चाहती बलिदान ।
दया, ज्ञान, श्रम का,
तन, मन, धन का
ए ! सपूत शिक्षक सावधान ।

युग-युगो से अन्धकार छाया ।
ऐश्वय परित्याग कर आग आया ।
बुद्ध, महावीर म दीक्षक,
सुभाष, अम्बेडकर से शिक्षक,
किया कम के मम का आह्वान ।

देख राष्ट्र की दीन दशा ।
आज मानवता व्यग्य कसा ।
सामने चुनौती,
कस मजबूत धोती,
सज नव भारत भाग्य विधान ।

कराडा विकल आखें तेरी ओर ताकती ।
अद्धनग्न शोषित जनता कुछ मागती ।
शिक्षक बन दीक्षक,
हो कमवीर, रह न भिक्षुक,
यही है समस्या का समाधान ।

ऐ शिक्षक चुनौती सिर पर ले।
'उजाला' अविरल अश्रु से झोली भर ले।
नव युग प्रवर्तक,
मम गहन मर्यादा रक्षक,
शिक्षक मसीह क्रम से बने महान।

०

ये वृक्ष

शकुंतला गौड 'शकुन'

जिन्दगी के यथार्थ में,
ये कठोर पर्वत
अपनी छाती पर
उगे अनेक वृक्षों को
निहार रहे हैं,
आश्चर्य चकित।
और

ये वृक्ष,
उसी कठोरता पर
पनपते हुए
अपनी बाहों को फैलाए
अनन्त आकाश की ओर
बढ़ रहे हैं, ये वृक्ष।

झेलते हुए कितने ही,
आंधी, तूफान
वर्षा, ओले
और हिमपात
सभी को छाया
और हरीतिमा बांटते
निर्लोभ बढ़ रहे हैं
ये वृक्ष।

यथाथ का स्वीकारन
कठारता को सहन
नि स्वाथ भाव से
सवा करने
समानता और
स्वतत्रता का पान
ऊचे और अधिक ऊचे
बढने की,
प्रेरणा दत है,
य वक्ष ।
कठोरता पर पनप रहे ह
य वक्ष ।

०

रात मे

पुष्पलता कश्यप

सडक पर कोई भी व्यक्ति नही
रास्ते के दोनो ओर बडे-बडे मकान
सिर उठाकर गर्व से खडे
मदिरो की घटिया खामोश !

गुम्बजो पर लटकती चादनी
सफेद साडी-सी चमकती
कुहराई रात मे

आओ,
किसी बडी नदी पर चले
कितनी उदासी,
कितना अकेलापन !

इन क्षणो मे
चादनी एक जादू है
बेशक

०

परछाई

श्याम निर्मोही

जब जब मैं किवाड की परछाई देखता हू
तो उस आदमकद
भोली आत्मा का साक्षात्कार होने लगता है

जो चिलचिलाती हुई दुपहरिया म
मुझे अपने आचल के पहलू से
ठडी-ठडी हवाए दकर
मेरे अन्तर मे जिजीविषा प्रदान करती थी

आज न जान क्या अचानक इन पलो म
उनकी याद ताजा हो आयी है
अपन ही ड्राइग रूम क दपण म लहराता हुआ आचल
और शुभ्र मुस्कान के साथ
किन्ही अथमय सम्बोधना के साथ

मुझसे मूक वार्तालाप कर रही है
जब जब भी किवाड की परछाइ देखता हू
ता, उस आदमकद

भाली आत्मा का साक्षात्कार होने लगता है ।

o

गजल

गोपाल कृष्ण 'निर्झर'

तरे मुतल्लक बात भी ना अब जुबा प आयेगी,
सौ बार खाई जा कसम न तोडा किया मैं।

है क्सम मैं राह बदलू तू चले जिस राह प,
तेरे कदमो के ही पीछे फिर भी तो दौडा किया मैं।

साथ गुजरे पल जो तरे भूलना चाहा सदा,
तेरी यादो से स्वय को फिर भी ता जाडा किया म।

तरी सूरत मरे जेहन म उभर ना पायेगी,
सोचकर के आखिरी हर बार ही सिजदा किया मैं।

याद तरी आई जब भी मौत मागी ए खुदा
याद म तरी तडपने जिन्दा ही छोडा गया म।

o

आत्मबोध

सरोज कछवाहा

जीवन वीणा के तारों को
कर दिया है,
इतना शिथिल मैंने
कि नहीं ठहर पाती है—
कोई मीड अब
उन पर।
न जाने
पर
कौन भीतर
इतना प्रज्वलित है
कि छूते ही उनको
झनझना उठती है—
तार सप्तक-सी !
बस,
टूटने का एहसास ही
गूंजता है—
तब !
कितना भ्रम है ?
स्वयं के जीवन की
इस कृति पर।

०

जीने के लिए

शांतिलाल शर्मा 'सखा'

जीवित है बस जीने के लिए
न अपने स्वय के लिए
न किसी के हित-अहित के लिए,
इंतजार मे बस उम्र पूरी करने के लिए।

जीवन पथ को पार करने
उदय से अस्त तक,
प्रारम्भ से अनन्त अन्त तक,
पहुचने को बस,
जीवित है जीने के लिए।

स्वच्छन्द वनदेवी की गोद मे,
भ्रमण करते अपनी ही मोद मे
जीवन करते व्यतीत क्षण,
न बंधन न भय किसी का
चहु ओर राज्य है बस उसी का,
खग-मग, जीवन है बस जीने के लिए।

विवेकशील उन्हें जीन दो,
सुखमय जीवन बिताने दो,

उन्हें अपनी क्षुधा का शिकार
बनाकर
छीनो न उनका कभी,
जीवित रहने का अधिकार
क्योंकि वे सब,
जीवित हैं बस जीने के लिए।
०

ये क्या हो रहा है

अरविन्द तिवारी

जो रात भर जागा
वह दिन म सो रहा है
जो रात भर सोया
वह भी दिन म सो रहा है
आखिर इस देश को ये क्या हो रहा है ?

जड आरी स कटती है
पत्ता का लाग पानी दत है
धम का इजेक्शन लगाकर
मनुष्यता की चीर फाड करत ह
चारा ओर पीडाआ का
उत्सव हो रहा ह।
आम रास्तो पर भीड है
निषिद्ध रास्त भी भीड से भरे है
जिन्हाने कत्ल किया है
वे आरोपो स पर है
कालिख को
हर कोई कीचड स धो रहा है
आखिर इस देश को य क्या हो रहा है ?

o

अभिशप्त

पूर्णिमा शर्मा

अभिशापो का साप
चुपचाप रेगकर
न जाने कब
निकल भागा
वरदाना को डसकर,
याद नही
किस अशुभ घडी के
जन्म का आडम्बर
अरमाना की छुइमुई को
उगली दिखा
बेरहमी रूठ गया
मुस्कानो की सौगात पर
सवस्व न्योछावर कर
मैं सो गई
कल्पना के सुखद
बिस्तर पर,
जागी तो
शूला की डाली
लम्बी होती होती
एकाएक
न जाने क्यो
छोटी हो गई घटकर,

परिस्थितियो के थपेडे मे
जवान हो वेजुबान हो गई,
वसन्त की वासन्ती गध
होले से
कान मे कुछ कह गई,
भीत हिरणी सी
छटपटा रही हू
वेबस होकर,
निजता का अहकार
गलता जा रहा
पानी वनकर,
टूटते सतरगी सपने
मन के खडहर मे,
घने अधियारे की रोशनाई से
मीत लिख जाता गीत
अविश्वासो के कागज पर
उडते पत्तो की खडखड
दूर से आती,
उल्लुओ की आवाज सुन
सिहर सिहर
काप उठती हू थर-थर
पसीने से तर-ब तर,
सूखा हलक
आखो से
आसू बहते झर झर
ख्वाबो मे तब कोई
घायल परिन्दा
फडफडाता सा उतर कर
न जाने कैसे
यादो के झुरमुट मे
वसेरा करता अपना बनकर,
दर्द हल्का-सा

कचोटता
मन की पर्तों पर
भीतर ही भीतर
मन की चौखट पर
अनजाना सा कोई
दस्तक देता
साझ सकारे
मन के द्वार
मेरी निजता से बधा
मेरे सपना का सौदागर।
०

आओ हम तुम मिलकर गाये

प्रेम भटनागर

हृदय वीणा के सुर मे मिलाकर,
ऐसा गीत न जिसका अत हो।
झूम उठे तरु के पल्लव भी,
मुखरित जिसस सभी दिगत हो।
प्रेम सलिल का घट भर लाये,
आओ हम तुम मिलकर गाये।

मुरझाई जिनकी हृदय वल्लरी,
उस पर हम यह सुधा उडेलें।
नव जीवन पाकर वे जिससे,
फिर से खिलें उस पर लगी कोपलें।
आओ हम तुम मिलकर गायें
भाव सुमन जिससे खिल जाये।

पाकर जिनकी भीनी सुरभि
उर उपवन जिससे उठ महके।
घिर आये अलि टाली भी,
मन पछी भी जिसमें चहके।
स्वप्ना का ससार सजायें,
आओ हम तुम मिलकर गायें।

०

प्रतीक्षा

प्रेम खकरधज

धानी, नीलम परी की आखा म
उतर आया है सिसकी भरा सन्नाटा
काली राता का ।
किसी राक्षसी पजे ने नाच लिए है
किसी अभागी मा के
स्वप्न पाखी के
पख ।
उत्सव के द्वार पर मण्डित कहकहा की रगाली
के आकारा को पूर दिया है
मानवता की लोथो से
कौन है ? जिसने छेडा है
ये रक्त राग
और
मखमली हरियाली पर छोड दिये है
खून भर बूटा के नुकीले
निशान
उनीदे यात्रिया की छाती मे
किसने भर दिये है
अगारे ?
सजीव सपना के निर्जीव आकार
को किसन दिया है

जनम ?
मैं जानता हू क्या चाहती हैं
ये जुनून भरी बखौफ आवाजें
चाहती हैं खौफ
आतंक
इतिहास साक्षी है
मानवता खत्म नही हुई
खून बहा भले ही
शताब्दियों तक
प्रताडित कभी नही थकता
थकता है वह हाथ जो
करता है प्रताडित
थकता नही इसान
थकता है शैतान
हमेशा नही रहती रात
कभी तो आता है
सवेरा
मुझे प्रतीक्षा है
प्रतीक्षाऽऽऽ
०

साझ ढलने से पहले

प्रेमप्रकाश व्यास

तुमने यह कब कहा कि
इन सदाओ को सुनो,
तुम तो पहाड से,
बस पगडडी की तरह उतरे
और फैल गए मैदानो मे,
सर्दी के बादलो की तरह,
ऊचे, ऊचे और ऊचे,
आकाश से भी ऊचे,
और मैं तुम्हे पकडने को दौडा कि
मेरी साम के कपडे तार-तार हो गए,
दूर पहाड पर
अस्त होते सूरज से तुम,
लाल, पीले, नारगी धागो को उलझाते,
न जाने कितनी देर मुस्कराते रहे,
और मैं उन्हे समेटता रहा,
एक एक करके,
लपेटता रहा,
यादो की फिरकी पर
साझ ढलने तक
धागो का रग
तुम्हारी मुस्कान सा था।
०

ग्रीष्म की संवेदनाएं

शशिबाला शर्मा

बेरोजगारी की तरह
बढ रहा है दिन का तापमान
सेल्सियस दर-सेल्सियस
अपने अपने स्तर पर
लोग आक्रमण झेलने पर आमादा हैं
कहीं एयर कंडीशनर क्रय हो रहे हैं
कहीं कूलर गम गुफा से निमंत्रित है
अपना खस जब इतराने लगा है
श्राद्ध पक्षीय कागो की तरह
सतर, मिक्सी और रसना पर्कटस की मन्द स
कुछ सुविचारिकाएं जुटाने लगी है
अपने सुगृहिणी होने का परिचय
रडीमेड वस्त्र भंडारो पर
परिभाषित है उसकी अगुवाई
वन्त कुर्तों के हैंगस म
दीर्घाकारी तालाब गत यौवन होकर
खो बठे हैं रूपाकृति भी
कुओं और हैंड पम्प्स का जल स्तर
अथाय अजगर की तरह
बठने लगा है कुंडली मार कर
और बंजराती जमीन के पपडाते होंठो पर
दरकने लगी है एक आहत मृग-तृष्णा

अकाल घोपणा की
मगर मेरे पडोस के मकाना की
छत बनाते और धूप म
पत्थर ताडत ये जीवधारी
न जाने किस मिट्टी स बन है
कि पसीने की धाराओ को पोछत तक नही
सूरज की तपन क्या इनके लिए
चादनी बन गई है ?
नही, शायद पेट की भूख सबसे मुखर है
पर उफ ! भरी दुपहरी म
सोने भी ता नही देत।

०

शहीदो के नाम

कुसुम कुलश्रेष्ठ

शहीदो !
क्या तुम जानते थे
तुम्हारे सपनो के देश म
मा भारती की ये करोडो सताने
गरीब और अमीर नाम के
दो वर्गों म बट जायेंगी
एक दूसर से कट जायगी
अमीर महलो म सोया करगे
गरीब फुटपाथो प रोया करेंगे
एक पर पसा बरसगा
दूसरा पसे पस को तरसगा
तुम्हारे खून की धरती पर
स्वराज्य की छत्रछाया म
बेसहारा विधवाए
निधन माताए
अनाथ बच्चे
अपाहिज आदमी
अमीरो की दया पर जिया करेंगे
अपन खून क आसू पिया करेंगे
अनाज पदा करन वाल किसान
भूख सोया करेंगे
कपडा बनान वाले मजदूर

अपने बच्चा को नगे बदन देखकर
रोया करेंगे
वतन की मिट्टी म
खामोश सोये हुए
गुमनाम खोये हुए
अमर वीरो,
क्या तुमने कल्पना की थी
समाजवाद के धरातल पर
आम आदमी की हालत का
गलत अनुमान लगाकर
समद्धि
उपलब्धि और
सफलताओ को
केवल आकड़ो की तराजू मे
तोला जायेगा ?
जिनके सामने रोटी रोजी का सवाल है
उनको खुशहाल बताने का झूठ
सरआम बोला जायेगा।
गणतन्त्र के जन्मदाताओ,
हम किससे कहे कि अब
पुराने भाषणो से
काम नही चलेगा
वक्त रहते यदि
पूजीवाद के नासूर को
नही काटा गया,
धन और धरती को नही बाटा गया
अमीर गरीब की खाई को
नही पाटा गया तो
जनता के धय की शबनम
शोला म बदल जायगी
उनके आख की नमी
एटम के गोलो मे बदल जायगी।
०

गीत

जगदीश प्रसाद सैनी

सूखी नदिया बहती अखिया
अबर के झूठे झास है।
किस उपवन मे उमडा सागर
प्यास अधर अभी प्याम है।

सरवर खद ही पी गय पानी, तरु की पगचपी मे छाह।
किरणो के कोडो से उधडी पीठो को दे कौन पनाह?
नही धरा पर हरियाली है, नही घटा नभ मे काला है,
नही बरसता कोई बादन, फिर य कसे चौमास है?
प्यासे अधर अभी प्यासे हैं।

लावारिश वहता सटका पर लाहू की कितनी मदी है।
कहा तस्करी हुई हवा की, सामा पर भी पाबन्दी है।
मर-मर कर साने से सपने, दफन हा गये दिल म कितने,
कफन फरोशो की बस्ती मे, खुशहाली लाती लाशे ह।
प्यासे अधर अभी प्यासे है।

रखवालो की भीड लगी है, नजर नही आती रखवाली।
खाले बीज उगाते नार ये कस बगिया के माली?
कदम-कदम पर बिखरे काटे, बटवारा ने रस्ते बाटे,
गली-गली म हैं हत्यारे, घर घर चोरो के वास है।
प्यास अधर अभी प्यासे हैं।

द्रुपदाओ के चीर दुशासन चौराहों पर खीच रहे है।
रब के ठेकेदार धम की जड पापा से सीच रहे है।
धरती बाटी, अबर बाटा, नफरत बो दिल से दिल काटा,
किसने प्रलय बुलाई दर पर, पल-पल प्राणो क सासे है।
प्यास अधर अभी प्यासे हैं।

०

सम्पर्क सूत्र

1 भागीरथ भार्गव, 88 आर्य नगर अलवर 301001
2 कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली 313324
3 सावित्री परमार, पालीवाल भवन, खजाने वाला का रास्ता, चांदपोल, जयपुर
4 भानप्रकाश पीयूष, रा० सी० उ० मा० वि० रायसिंहनगर (श्री गंगानगर)
5 स्वयं भारद्वाज, सुमन सेवा सदन, रायसिंहनगर (श्री गंगानगर)
6 दिनेश विजयवर्गीय भाग-4, सी-215 रजतगृह कालोनी, बूंदी-323001
7 मालचंद्र शर्मा, सहायक निदेशक, शिक्षाकर्मी बोर्ड, सीताराम हाउस, जयपुर
8 श्रीनन्दन चतुर्वेदी, 14/319 बजाज खाना, टाकोत पाडा घटाघर, कोटा
9 ओमपुरोहित कागद, 24 दुर्गा कॉलोनी, हनुमानगढ संगम (श्री गंगानगर)
10 त्रिलोक गोयल अग्रवाल सी० उ० मा० विद्यालय, अजमेर
11 हनुमान दीक्षित, प्र० अ०, रा० उ० प्रा० वि० नं० 1, नोहर (श्री गंगानगर)
12 सुरेश चन्द्र उदय, उ० अ०, रामावि, थाणा, (सराडा) उदयपुर
13 वासु आचार्य, वाहेती चौक, बीकानेर
14 अंजना भटनागर, व० अ०, राबामावि, चौमहला (झालावाड) 326515
15 श्रीकृष्ण विश्नोई, व्या०, श्री जैन उमावि, बीकानेर
16 बुलाकी दास बावरा, धोबी धोरा, सूरसागर के पास, बीकानेर
17 विजयसिंह राव, व० अ०, आमेट (उदयपुर)
18 मन्दाकिनी काल, व० अ०, राबामावि, बागीदौरा (बांसवाडा)
19 गिरधरप्रसाद बिस्सा, सखोटिया का चौक, बीकानेर
20 सरला भूपेन्द्र, एम० पी० आर० सहरिया गौउमावि, कालाडेरा-303801
21 महेन्द्र यादव, हीरा फ्लोर मिल, माजरीकला, अलवर 301702
22 अरविन्द चूरूवी, व्या०, रामीउमावि रतननगर (चूरू)
23 जयपालसिंह राठी, व० अ०, रामावि, गूगा (बाडमेर)

24 करनसिंह चेसर, स० अ०, राउप्रावि, पानेर, गोगुन्दा, उदयपुर
25 मोती विमल, आकोला
26 माधव नागदा, व्या० सी० उमावि, राजसमन्द (उदयपुर) 313326
27 केशव आचार्य 'तरंग' राउमावि, आकोला
28 तारासिंह, व्या० राउमावि दूधवाखारा (चूरू)
29 प्रकाश तातेड, स्टेशन रोड, आमेट (उदयपुर)
30 पारसचन्द जैन, प्र० अ०, रामावि, आवां (टोंक)
31 बृजनारायण कौशिक, 5 क-1, जवाहरनगर, श्री गंगानगर
32 ईब्राहिम खां सम्मा जालोरी सम्मा का वास, जालौर 343001
33 बृजभूषण भट्ट, प्र० अ०, रामावि, तारागढ़ (अजमेर)
34 गणेश तारे, प्राचार्य एलबर्ट आइंसटाइन स्कूल, सिटी पैलेस, कोटा
35 चंचल कोठारी, व्याख्याता, रासीउमावि, राजसमन्द (उदयपुर) 313326
36 जगदीश सुदामा, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चौहट्टा, उदयपुर
37 चमेली मिश्र, प्र० अ०, राबामावि, सादड़ी (पाली)
38 जितेन्द्रशंकर बजाड़ भीचोर (चित्तौड़गढ़)
39 नारायणकृष्ण अकेला, प्र० अ०, रामावि, भटियानी चौहट्टा, उदयपुर
40 ज्ञानसिंह चौहान, रामावि, कुआथल वाया चारभुजा रोड, उदयपुर
41 रमेश मयंक, प्र० अ०, रामावि, रूद (चित्तौड़गढ़) राज०
42 दशरथकुमार शर्मा, प्र० अ०, रामावि, पचेवर (टोंक)
43 रजनी कुलश्रेष्ठ, 11 ए, सुभाषनगर, उदयपुर
44 सुभाषचन्द्र शर्मा, व्या०, रासीउमावि, दूदू (जयपुर)
45 सीताराम व्यास राहगीर, रेलवे कालोनी क्वाटर डी 2, बाड़मेर
46 रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश', नीमघटा, डीग (भरतपुर)
47 रमेशचन्द्र पारीक, केन्द्रीय विद्यालय नं० 1, मोतीडूंगरी के नजदीक, अलवर
48 निशान्त, द्वारा श्री बसन्तलाल हेमराज, पीलीबंगा 335803
49 अरनी राबर्टस, पोस्ट आफिस के सामने, भीमगंज मण्डी, कोटा 2
50 ओमप्रकाश सारस्वत, प्र० अ०, रामावि, बीरमाना (श्री गंगानगर)
51 राधाकिशन चांदवानी, बाम्बे मेडिकल स्टोर के पीछे कोटगेट, बीकानेर
52 रामनिवास सोनी झवरों की गली, डीडवाना (नागौर)
53 उषाकिरण जैन, प्र० अ०, अतिशय क्षेत्र, पदमपुरा
54 मनमोहन झा प्र० अ०, रा० सीउमावि, बागीदौरा (बांसवाड़ा)
55 श्यामसुन्दर भारती, फतहसागर, जोधपुर
56 शशिकर खटका राजस्थानी, कवि कुटीर, बिजयनगर (अजमेर)
57 श्रीमाली श्रीवल्लभ घोष, सुगन्ध गली, ब्रह्मपुरी, जोधपुर

58 सरोज चौहान, प्र० अ०, रा० बा० मा० वि, गगापोल, जयपुर
59 नीना भटनागर, व० अ०, रामावि पुनरासर (चूरू)
60 करनीदान बारहठ, फेफाना (श्री गगानगर)
61 मुख्तार टोंकी, काली पलटन रोड, पुल माहम्मद खा, टोंक
62 भूपेन्द्र उपाध्याय 'तनिक', प्र० अ०, राउप्रावि, भूपल (बासवाडा)
63 ताराचन्द जैन, अ०, राउप्रावि, आदर्शनगर, पाली-306401
64 सोहनलाल सिंगारिया, प्र० अ०,राउमावि, तापदडा, अजमेर
65 शकुन्तला गौड, 4/2 पी० डब्ल्यू डी० कॉलोनी, सिरोही
66 पुष्पलता कश्यप, हनुमान मन्दिर, कचहरी पोस्ट आफिस के पास, जोधपुर
67 श्याम निर्मोही, अवर उपजिशिअ० छात्र सस्थाए, नाथद्वारा
68 गोपालकृष्ण निझर, रामावि कनौज (चित्तौडगढ)
69 सरोज कच्छवाहा, सी० एफ० 15, हाईकोर्ट कालोनी, जोधपुर
70 शातिलाल शर्मा, सखा , शिक्षक राउप्रावि, सोजिनाना, गगरार (चित्तौडगढ)
71 अरविन्द तिवारी, व० अ०, रामावि, ताऊसर (नागौर)
72 पूर्णिमा शर्मा, सहायक निदेशक एस० आई० ई० आर० टी०, उदयपुर
73 प्रेम भटनागर, प्र० अ०, रामावि, झाडोल (सराडा) उदयपुर
74 प्रेम खकरधज, प्र० अ० रामावि, खरवा (पाली)
75 शशिबाला शर्मा, प्र० अ०, राबामावि, आसपुर (डूगरपुर)
76 कुसुम कुलश्रेष्ठ, राबामावि, थानागाजी, अलवर
77 प्रेमप्रकाश व्यास, प्र० अ०, रामावि, जसाद (बाडमेर)
78 जगदीश प्रसाद सैनी, प्र० अ०, रामावि, प्रीतमपुरी, सीकर

□□



कैलाश वाजपेयी

जन्म 11 नवम्बर, 1934। शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए०, पी एच० डी०। सन् 1960 में टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन संस्थान द्वारा बम्बई में नियुक्ति। सन् 1961 से दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेजों में प्राध्यापन। सन् 1967 में चैकोस्लोवाकिया की यात्रा। सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत 1970 में रूस, फ्रांस, जर्मनी स्वीडन और अन्य यूरोपीय देशों में काव्यपाठ। सन 1972 में भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र ब्रिटिश गायना जार्ज टाउन में केन्द्र-संचालक के रूप में निर्वाचित। सन् 1973 से 1976 तक मेक्सिको के एल कालेजियो दे मखिको में विजिटिंग प्रोफेसर। सन 1976 के मध्य से 1977 के शुरू तक अमरीका के डैलस विश्वविद्यालय में एडजक्ट प्रोफेसर। सन 1983 में क्यूबा सरकार द्वारा हिन्दी कविता पर व्याख्यान और कविता-पाठ के लिए हवाना में आमन्त्रित। सन् 1984 में कोएनोनियम फाउंडेशन के निमन्त्रण पर अमरीका के चार विश्वविद्यालयों में काव्य-पाठ। दिल्ली दूरदर्शन के लिए कबीर, हरिदास स्वामी, सूरदास, जे० कृष्णमूर्ति, रामकृष्ण परमहंस और बुद्ध के जीवन दर्शन पर फिल्म निर्माण। भारतीय दूरदर्शन की हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य।

प्रकाशित कृतियां शोधप्रबंध आधुनिक हिन्दी-कविता में शिल्प (1963)। कविता संग्रह—संक्रान्त (1964) देहान्त से हटकर (1968), तीसरा अंधेरा (1972) महास्वप्न का मध्यान्तर (1980)। पांचवां कविता-संग्रह 'सूफीनामा' प्रकाशनाधीन। रूसी जर्मन स्पेनी, डेनिश स्वीडिश और ग्रीक भाषाओं में कविताएं अनूदित प्रकाशित।